ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 24, अंक 224 जून 2022

कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हंसत हम रोय।
ऐसी करनी कर चलें, हम हंसे जग रोय।।

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 24 अंक 224
जून 2022

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रहिम श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ. बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा एवं उनके वैचारिक निर्माण पर प्रभाव	हेमाराम तिरदिया	04
3	स्वतंत्र भारत में नारी की परम्परागत तथा विधिक स्थिति : एक दृष्टि	डॉ. इमरान अहमद	09
4.	नई कहानी में नारी अस्मिता	ब्रजेश उपाध्याय	12
5.	उदयप्रकाश के साहित्यिक विकास की दिशा व आशाएँ	उपदीप कौर, शोधार्थी डॉ. ज्ञानीदेवी गुप्ता, निदेशक	17
6.	महात्मा गाँधी, सामाजिक परिवर्तन एवं दलित समाज	रेणुका चौधरी	20
7.	Contribution of Sikh Gurus towards Communal Harmony	Dr. Kavita Rani	23

UGC Care Listed Journal

खाते का नाम – आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.– 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा– फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

पर्यावरण एवं मानव के बीच अभिन्न संबंध है तथा पर्यावरण की गुणवत्ता का मानव जीवन की गुणवत्ता से गहरा सहजीवी संबंध है। पर्यावरण की रक्षा व मानव के सतत् विकास की सहगामी अवधारणा को सतत् विकास, जीवन सह विकास या संपोषित विकास के नाम से जाना जाता है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन वर्तमान व भावी पीढ़ी दोनों के हितों को ध्यान में रखते हुए किया जाना ही सम्पोषित विकास है। विकास को केवल आर्थिक उत्पादन से न जोड़कर उसके सामाजिक व पारिस्थितिक पक्षों पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

पर्यावरणीय समस्याओं ने बीसवीं शताब्दी में विश्व समुदाय की तन्द्रा भंग कर दी थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में जून 1972 में स्टाक होम में आयोजित विश्व पर्यावरण सम्मेलन में सम्मिलित भारत सहित 119 देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने गहरी चिंता व्यक्त की थी। यह सम्मेलन पर्यावरण हेतु प्रथम सामुहिक प्रयास के रूप में सामने आया, तब से ही जनचेतना जागृत करने हेतु प्रतिवर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाने लगा।

विश्व की सबसे बड़ी आपात स्वयं सेवी संस्थाओं रेडक्रॉस तथा रेड क्रेसेण्ट सोसायटी की 1999 की रिपोर्ट में यह चेतावनी दी गई थी कि विश्व महा विपदा के दशक की ओर अग्रसर हो रहा है। प्राकृतिक आपदाओं में बड़ी संख्या में लोग प्रभावित होंगे। गुजरात में आए भूकम्प और सुनामी लहरों के कहर की घटनाएं हम देख चुके हैं।

हम पेड़ों की कद्र करना भूल गये हैं। जन सामान्य को यह बताया जाना चाहिए कि एक पत्ता अपने जीवनकाल में इतनी ऑक्सीजन उत्पादित करता है कि उससे एक आदमी चार दिन तक सांस ले सकता है। पर्यावरण विज्ञानी यह मान चुके हैं कि अगर मनुष्य खत्म हो जाए तो धरती खत्म नहीं होगी लेकिन यदि पेड़–पौधे और जीव–जंतु खत्म हो जाए तो इंसान भी खत्म हो जाएगा और धरती भी खत्म हो जाएगी।

वर्तमान में देखने में आ रहा है कि लोग अपनी जीवन शैली में उपयोगिता के स्थान पर उपभोक्तावादी बनते जा रहे हैं। यह उपभोक्तावादी या विलासितापूर्ण जीवन शैली प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत से ज्यादा उपयोग करवा रही है। विश्व की जनसंख्या ने एक वर्ष में कितने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया, कितने बनाए एवं कितनों में सुधार किया, इन सभी की गणना कर ग्लोबल फूट प्रिंट नेटवर्क ने अतिदोहन दिवस की घोषणा की थी। वर्ष 1970 में अतिदोहन दिवस 29 दिसम्बर था जो कि 2021 में 29 जुलाई को मनाया गया, इसका अर्थ यह हुआ कि जो संसाधन हमें 12 महीने में उपयोग करने थे वे हमने 7 महीनों में ही उपयोग कर डाले। वैश्विक स्तर पर की गई एक गणना अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग 50 अरब टन होना चाहिए, परन्तु हो रहा है 88 अरब टन। पर्यावरणविद् प्रो. टी.एन. के अनुसार सादगीपूर्ण जीवन अपनाने से ही सतत् विकास संभव है।

हमें पर्यावरण की रक्षा के लिये विकासात्मक गतिविधियों को रोकना नहीं है लेकिन यह जरूरी है कि हमें पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं करना है क्योंकि विकास से अभिप्राय समग्र विकास से है। यदि हम केवल इतना ध्यान रखें कि ये पेड़–पौधे, नदियां–तालाब, वन्य–जीव हमें हमारी पूर्व पीढ़ी ने सुरक्षित कर के दिया है तो हमारा भी नैतिक दायित्व है कि हम भी अपनी आनेवाली पीढ़ी तक इसे सुरक्षित पहुंचाये। इतना करने से ही विकास के नाम पर पर्यावरण को होने वाली क्षति समाप्त हो जायेगी। यही सतत् विकास की संकल्पना का आधार है।

पर्यावरण असंतुलन से निपटने की जिम्मेदारी केवल सरकार की ही नहीं है, इसके प्रभावी समाधान के लिये प्रत्येक देशवासी को स्वयं से जवाबदारी लेनी होगी। देश के औसत और आम आदमी को यह समझाने की जरूरत है कि हर साल किसी न किसी रूप में आनेवाली प्राकृतिक आपदाओं सूखा, बाढ़, चक्रवात, भूकम्प, अकाल और महामारी आदि के मूल में पर्यावरण असंतुलन ही है। इस असंतुलन को रोकने के लिये प्रकृति व प्राकृतिक संसाधन का संरक्षण हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। इसीलिये प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के विरुद्ध हम सबको 'त्याग के साथ भोग' का सिद्धांत अपनाना होगा। 'त्येन त्यकतेन भुज्जीथा'' का यह सिद्धांत जहाँ संस्कृति का मूल स्वर है वही सम्पूर्ण विश्व के निरंतर और शाश्वत विकास की नींव भी इसी पर टिकी है।

– डॉ. तारा परमार

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा एवं उनके वैचारिक निर्माण पर प्रभाव

– हेमाराम तिरदिया

प्रस्तावना – विचार, व्यक्ति व समाज का दर्पण होता है। विचार ही किसी व्यक्ति या संगठन को खड़ा करते हैं या उसे रसातल में ले जाते हैं। व्यक्ति का निर्माण भी विचारों से ही होता है और विचारों की लड़ाई लड़कर ही व्यक्तियों ने अपना नाम इतिहास में दर्ज करवाया है।[1] यूनानी दार्शनिक सुकरात ने जहर का प्याला पीना स्वीकार किया, मगर अपने विचारों से विचलित नहीं हुए। वैश्विक पटल पर दृष्टि डालें तो तथागत गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, ईसा मसीह, गुरू नानक, संत कबीर, संत रैदास, महात्मा ज्योतिबा फुले, महात्मा गांधी, कार्ल मार्क्स, अब्राहम लिंकन, नेल्सन मंडेला जैसे महानतम विचारक हुए जिन्होंने सामाजिक समस्याओं को वास्तविक रूप में समझते हुए पाखण्ड व अंधविश्वास मुक्त नव समाज निर्माण की परिकल्पना की। विचारकों की इस श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण नाम बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का भी है। उनका जीवन मात्र एक व्यक्ति का जीवन नहीं था बल्कि उसमें जाति, वर्ण, संप्रदाय, प्रदेश, देश, देशान्तर की संपूर्ण विचारधाराएं समाहित थी। अस्पृश्यता से लेकर राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनका प्रभाव परिलक्षित होता है। जन–जीवन में ऐसी कोई समस्या, कोई प्रश्न, कोई कृत्य नहीं, जिस पर उन्होंने चिंतन – मनन न किया हो। बीसवीं शताब्दी के महानतम बुद्धिजीवियों में से एक डॉ. अम्बेडकर सामाजिक समानता की क्रांति के महानायक हैं। उनकी विचारधारा का मूल आधार स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का भाव है जो भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दर्शनों से प्रभावित है। तथागत बुद्ध, संत कबीर एवं ज्योतिबा फुले उनके प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं वहीं जॉन डीवी एवं बुकर टी. वाशिंगटन ने भी उनके विचारों को उद्वेलित किया। प्रस्तुत शोध आलेख में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारदर्शन एवं उनके वैचारिक निर्माण पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है जिसका मुख्य उददेश्य डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान समय में उनके विचार दर्शन की प्रासंगिकता को समाज में पुनः उजागर करना है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा के मुख्य पहलुओं पर विचार एवं व्याख्या करने से पूर्व यह जानना आवश्यक होगा कि विचारधारा क्या है? विचारधारा की अवधारणा सामाजिक–राजनीतिक चिंतन एवं विचारों के इतिहास की सर्वाधिक विवादास्पद एवं जटिल अवधारणाओं में से एक है। सामान्य अर्थों में विचारधारा, विचारों का समूह है जो व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर समाज में मूल्यों एवं दृष्टिकोणों की समानता उत्पन्न करती है। विचारधारा शब्द फ्रांसीसी दार्शनिक एंटोनी डेस्टट दी ट्रेसी द्वारा गढ़ा गया था जिन्होंने विचारों के विज्ञान के रूप में इसकी कल्पना की।[2] साम्यवाद के अंतर्गत विचारधारा को मिथ्या चेतना की अभिव्यक्ति कहा गया है। प्रस्तुत आलेख में विचारधारा को इसके सामान्य अर्थ विचारों के समूह के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

सभ्यता और मानवीय जीवन मूल्यों की लम्बी एवं पीड़ादायक विकास यात्रा में महापुरूषों की एक लम्बी श्रृंखला है जिन्होंने अपने विचारों से समाज को एक नवीन दिशा प्रदान की। बीसवीं शताब्दी में अपने विचारों से विश्व को प्रभावित करने वाले महानतम विचारकों में बाबसाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर का नाम अग्रणी है। उनके विचारों ने राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि लगभग जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया। यहाँ प्रश्न उठता है कि डॉ. अंबेडकर की विचारधारा क्या डॉ. भीमराव अंबेडकर की विचारधारा जो अंबेडकरवाद के नाम से प्रसिद्ध है, उनके द्वारा विकसित सामाजिक – राजनीतिक विचारों का समूह है। यह किसी जाति, धर्म, रूढिवादिता, भेदभाव एवं असमानता को न मानते हुए मानव – मानव को जोड़ने

एवं मानव कल्याण हेतु किए जा रहे प्रयासों का नाम है। डॉ. अंबेडकर की विचारधारा मानव मुक्ति का विचार है, यह मानवीय गरिमा की स्थापना के लिए चलाया गया आंदोलन है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का वाहक है। यह अन्याय एवं शोषण का विरोध कर एक वैकल्पिक मानवतावादी व्यवस्था का पथ प्रशस्त करती है। इस संसार में कोई भी काल्पनिक या सांसारिक वस्तु मनुष्य की अपेक्षा महान नहीं है, जो संस्कृति, समाज या साहित्य मनुष्य को लघु या हीन बनाए उसके विरुद्ध विद्रोह ही अंबेडकर की विचारधारा है।

डॉ. अंबेडकर की विचारधारा का मूल उद्देश्य मानव विकास के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना है जो स्वतंत्रता, समानता, बंधुता एवं न्याय पर आधारित हो। अस्पृश्यता का अंत, वंचितों एवं महिलाओं का सामाजिक उत्थान, संविधान में निहित मौलिक अधिकारों की रक्षा, एक नैतिक एवं जाति मुक्त समाज की स्थापना, बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार और भारत राष्ट्र का विकास उनकी विचारधारा का प्रमुख उद्देश्य है।

डॉ. अंबेडकर की विचारधारा किसी अन्य के विचारों की प्रतिकृति न होकर स्वयं अपनी विशेषताओं से युक्त है। यह कोरे आदर्शवाद पर आधारित युटोपिया का निर्माण नहीं करती बल्कि व्यवहारिकता पर आधारित एक ऐसे समाज निर्माण का स्वप्न देखती है जिसमें अज्ञानता, अंधविश्वास एवं असमानता का कोई स्थान ना हो। यह मानव के अवमूल्यन के विरुद्ध संघर्ष करने वाली कृतिशील विचारधारा है जिसमें मानवतावाद को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यह मानव को अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की लड़ाई लड़ने की प्रेरणा प्रदान करती है। डॉ. अंबेडकर के विचार एवं दर्शन न केवल राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक हैं बल्कि आधुनिक, तार्किक तथा वैज्ञानिक भी हैं। मानव मुक्ति को प्रोत्साहित कर उसकी महानता को प्रतिष्ठित करने वाली डॉ. अंबेडकर की विचारधारा वंश, जाति और वर्गीय श्रेष्ठता का कठोरता से निषेध करती है। उनके विचार किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के लिए न होकर सम्पूर्ण मानवता के लिए थे। उनके प्रचार में व्यक्तिवाद, उदारवाद, समाजवाद, व्यवहारिक आदर्शवाद एवं राष्ट्रवाद विद्यमान है परन्तु इन सबमें भी अधिक महत्वपूर्ण मानवतावाद उनके विचारों का मूल आधार है।

यदि डॉ. अंबेडकर के विचारों को समझना है तो उनके विचारों के विभिन्न स्वरूपों की पहचान करना अति आवश्यक है जो समय – समय पर प्रकाशित उनके लेखों, भाषणों एवं पुस्तकों में विद्यमान है। डॉ. अंबेडकर ने अपने विचारों की व्याख्या अपनी रचनाओं विशेषकर – जाति की उत्पति, जाति का विनाश, बुद्ध तथा उनका धम्म और समाचार पत्रों – मूकनायक, बहिष्कृत भारत, समता, जनता, प्रबुद्ध भारत और भाषणों में की है। डॉ. अंबेडकर के विचारों का स्वरूप अति विस्तृत एवं व्यापक है। इसमें उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक, संवैधानिक, अस्पृश्यता उन्मूलन, लैंगिक समानता एवं महिला अधिकार संबंधी विचार समाहित हैं।[3] उनके विचार मात्र पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित न होकर उनकी लम्बी व कठोर शिक्षण यात्रा, व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन के कटु अनुभव तथा सामाजिक – राजनीतिक संघर्ष की उपज है। उन्होंने अपने चिंतन में ऐतिहासिक, विकासात्मक एवं तुलनात्मक उपागम का उपयोग किया है। उनका सामाजिक, राजनीतिक एव सांस्कृतिक चिंतन यथार्थपरक और मानवता के लिए था जिसमें मानव एवं समाज के हितों का सर्वोपरि स्थान था।

डॉ. अंबेडकर की विचारधारा, जिसे उनके अनुयायी अंबेडकरवाद नाम देते हैं कुछ और नहीं बल्कि उनके विचारों एवं आदर्शों का ही दूसरा नाम है जो मानवीय गरिमा, प्रतिष्ठा और उसके सम्मान की भावना से अनुप्रमाणित है। अन्याय का विरोध कर अधिकारों से वंचित जनता के लिए संघर्षरत डॉ. अंबेडकर के विचारों का केन्द्र सदियों से उपेक्षित मानवता के मूक प्रतीक अस्पृश्य, महिला, मजदूर, शोषित, वंचित और किसान रहे हैं। सरल शब्दों में कहें तो डॉ. अंबेडकर उस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मानवता में

विश्वास करती है, जिसके लिए स्त्री – पुरूष, जाति, धर्म जैसी कोई चीज कोई मायने नहीं रखती और जिसका मूलमंत्र ही समानता है।

विश्व के करोड़ों लोगों के हृदयों पर शासन करने वाले डॉ. भीमराव अंबेडकर का चिंतन एवं दर्शन बहुआयामी तथा विस्तृत है। स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, न्याय, लोकतंत्र, संविधानवाद, संवैधानिक नैतिकता, मानव अधिकार, शिक्षा, राष्ट्रवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तार्किकता, लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण, श्रम सुधार, धर्म एवं मानवतावाद उनकी विचारधारा के प्रमुख तत्व हैं। सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह का अंश भी उनके दर्शन में निहित है, यद्यपि यह उस रुप में परिलक्षित नहीं होता है जिस रुप में गाँधी के विचारों में होता है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर की विचारधारा के मुख्य पहलुओं पर विचार एवं व्याख्या करने के बाद यह समीचीन होगा कि ऐसे कौनसे प्रभाव थे जिन्होंने अंबेडकर की विचारधारा को उभारने और उसे एक निश्चित स्वरुप प्रदान करने में योगदान दिया। इस संदर्भ में अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उनके परिवार के सामाजिक व धार्मिक वातावरण ने उनको व्यापक रुप से प्रभावित किया। 25 अक्टूबर 1954 को मुंबई के पुरंदरे स्टेडियम में अपने भाषण में डॉ. अंबेडकर ने तथागत बुद्ध, संत कबीर एवं ज्योतिबा फुले को अपना गुरु एवं प्रेरणास्त्रोत स्वीकार किया।[4] इनके अतिरिक्त महादेव गोविन्द रानाडे, जॉन डीवी, बुकर टी. वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन, कार्ल मार्क्स, जे. एस. मिल आदि के विचारों ने भी उनके चिंतन को प्रभावित किया था।[5] रविदास, चोखामेला एवं तुकाराम जैसे संतों के विचारों का प्रभाव भी अंबेडकर पर पड़ा। यद्यपि उनकी विचारधारा के विकास एवं दिशा निर्धारण में सर्वाधिक योगदान उनके व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों का था।

डॉ. अंबेडकर का परिवार कबीर पंथी था। उनके पिता रामायण और महाभारत का पाठ करते तथा मोरोपंत, मुक्तेश्वर और तुकाराम जैसे मराठी संत कवियों के भक्ति गीत गाते थे, जिसका प्रभाव डॉ. अंबेडकर के चिंतन पर पड़ा। उनके अनुसार बुद्ध यह चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपना रास्ता स्वयं खोजे। बुद्ध को प्रथम समाज सुधारक मानते हुए अंबेडकर कहते हैं कि भारत में समाज सुधार का इतिहास बुद्ध से ही प्रारम्भ होता है। बुद्ध से उन्होंने समानता और अस्पृश्यता निषेध की शिक्षा प्राप्त की। डॉ. अंबेडकर बौद्ध दर्शन से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने 14 अक्टूबर 1956 को हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म अपनाया। उनके अनुसार बौद्ध धर्म समानता और न्याय के उपदेशों के माध्यम से पीड़ित लोगों को मुक्ति देने में सक्षम था। जनवरी 1908 में कृष्णाजी अर्जुन केलुस्कर से प्राप्त 'बुद्ध चरित' का उनके वैचारिक निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा।[6] बुद्ध के संदेश को जन–जन तक पहुंचाने के लिए डॉ. अंबेडकर ने 'बुद्ध और उनका धम्म' नामक कालजयी ग्रंथ लिखा और उसमें बुद्ध की समस्त शिक्षाओं का समावेश किया।[7] कबीर, डॉ. अंबेडकर के तीन गुरुओं में से एक थे जिन्होंने उनके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका परिवार कबीरपंथी था इसलिए कबीर की वाणी से उनका प्रथम परिचय अपने घर में ही हो गया था।[8] धर्म और जाति विशेष रुप से मानव मूल्यों पर कबीर के विचारों ने अंबेडकर के मन पर गहरी छाप छोड़ी। रहस्यवादी कवि एवं विचारक कबीर के अनुसार, ईश्वर एक है और वह निर्गुण–निराकार है तथा उसे किसी कर्मकाण्ड के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। कबीर ने अपने दर्शन में मानवता तथा सार्वभौमिक बंधुत्व पर बल देते हुए मूर्ति पूजा की निंदा की। जाति प्रथा और हिन्दू धर्म में प्रचलित विभिन्न पूर्वाग्रहों के विरुद्ध अंबेडकर के संघर्ष में कबीर के विचारों का प्रभाव है। आधुनिक महाराष्ट्र के क्रांतिकारी विचारक एवं समाज सुधारक महात्मा ज्योति राव फुले ने डॉ. भीमराव अंबेडकर को प्रभावित किया। माली जाति में उत्पन्न फूले ने शूद्रों के लिए शिक्षा की मांग करते हुए स्त्री–पुरुष समानता पर बल दिया। अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले के साथ मिलकर उन्होंने शूद्रों–महिलाओं की मुक्ति की अलख जगाई एवं मानवता का पाठ पढाया। उनका मानना था की शिक्षा

के माध्यम से ही सामाजिक परिवर्तन हो सकता है। दर्शन एवं पुस्तक – गुलामगिरी का डॉ. अंबेडकर पर विशेष प्रभाव पड़ा।[9] 1946 में प्रकाशित अपनी महत्वपूर्ण रचना 'शुद्र कौन थे' फुले को समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा कि फुले ने छोटी जातियों को उच्च वर्गों की दासता के प्रति जाग्रत किया और इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि सामाजिक लोकतंत्र की प्राप्ति विदेशी शासन से मुक्ति से अधिक महत्वपूर्ण है।[10] डॉ. अंबेडकर, महादेव गोविन्द रानाडे के राजनीतिक दर्शन से प्रभावित थे। रानाडे से उनमें समस्याओं को व्यवहारिक आधार पर विश्लेषण करने की समझ विकसित हुई।

भारतीय विचारकों के साथ–साथ डॉ. अंबेडकर पाश्चात्य बुद्धिजीवियों से भी बहुत प्रभावित थे। जॉन डीवी, बुकर टी. वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन, कार्ल मार्क्स , जे. एस. मिल, एडमण्ड वर्क एवं बट्रेण्ड रसेल प्रमुख पाश्चात्य विचारक थे जिन्होंने अंबेडकर के विचारों को प्रभावित किया। पाश्चात्य शिक्षा और प्रवास के दौरान डॉ. अंबेडकर में तार्किक, वैज्ञानिक एवं उदारवादी अधिगम विकसित हुआ, जिससे उनके विचारों में दृढ़ता एवं स्वभाव में गाम्भीर्यता आयी।[11] धनंजय कीर के अनुसार, जब अंबेडकर अमेरिका में थे तब उनका मस्तिष्क आवश्यक रुप से दो चीजों की ओर आकर्षित हुआ होगा। प्रथम, अमेरिका का संविधान और उसमें भी चौदहवां संशोधन जो नीग्रो की स्वतंत्रता को घोषित करता है। द्वितीय, बुकर टी. वाशिंगटन का जीवन, जो नीग्रो जाति के लिए सुधारक एवं शिक्षक थे।[12] पाश्चात्य शिक्षा ने अंबेडकर के क्षितिज को विस्तृत किया और अस्पृश्य समाज की मुक्ति के उनके संकल्प को दृढ़ बनाया। डॉ. अंबेडकर के विचार और जीवन को प्रभावित करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में जॉन डीवी प्रमुख थे। उनके अनुसार शिक्षा मात्र विश्व को समझने का नहीं बल्कि उसमें परिवर्तन का साधन है। शिक्षा के माध्यम से न केवल सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है बल्कि मानव जाति में शाश्वत मूल्यों के विकास हेतु भी उसकी उपयोगिता है। डॉ. अंबेडकर डीवी की ज्ञान मीमांसा एवं उनके वैज्ञानिक – प्रयोजनवादी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए। डीवी की प्रसिद्ध रचना डेमोक्रेसी एण्ड एज्युकेशन का अंबेडकर पर स्थायी प्रभाव पड़ा। अमेरिका प्रवास के दौरान डॉ. अंबेडकर महान दार्शनिक बुकर टी. वाशिंगटन से परिचित हुए जिन्होंने उनके निश्चय को दृढ़ता प्रदान की। वाशिंगटन ने अमेरिका के नीग्रो जाति की शिक्षा एवं उनके लिए समानता के अधिकारों पर बल दिया। इसी से प्रभावित होकर डॉ. अंबेडकर, दलित वर्ग की समस्याओं को दूर करने के अपने संकल्प को व्यवहारिक रुप देने की ओर अग्रसर हुए। डॉ. अंबेडकर के लोकतंत्र विषयक विचार अब्राहम लिंकन से प्रभावित हैं। लिंकन के अनुसार, लोकतंत्र जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन है। महान दार्शनिक कार्ल मार्क्स एवं उनकी विचारधारा का डॉ. अंबेडकर के विचारों पर गहन प्रभाव पड़ा। विशेषकर उनके आर्थिक विचारों के निर्माण में मार्क्सवादी दर्शन प्रेरणा के रुप में रहा।[13] श्रमिकों की मुक्ति के संबंध में डॉ. अंबेडकर के विचारें में 'कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो' का प्रभाव देखा जा सकता है।[14] जॉन स्टुअर्ट मिल के स्वतंत्रता एवं महिला अधिकार विषयक विचारों का प्रभाव डॉ. अंबेडकर के विचारों में परिलक्षित होता है, जिसकी झलक भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों में दिखाई देती है। डॉ. अंबेडकर के विचारों एवं लेखन पर एडमण्ड बर्क का भी प्रभाव था। अंबेडकर अक्सर अपनी स्थिति का समर्थन करने के लिए बर्क के लेखन से उद्धरणों का उपयोग करते थे। उपर्युक्त के अतिरिक्त अमेरिकी संविधान के चौदहवें संशोधन एवं फ्रांसीसी क्रांति ने अंबेडकर के विचारों को स्वरुप प्रदान किया।[15]

आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचार भारतीय राजनीति के लिए हमेशा ही प्रासंगिक रहे हैं। वे एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के पक्षधर थे जिसमें राज्य सभी को समान राजनीतिक अवसर दे तथा धर्म, जाति, रंग तथा लिंग के आधार पर कोई विभेद न किया जाए। वर्तमान समय में लोकतांत्रिक मूल्यों को बचाने के लिए जितने भी

आंदोलन चल रहे हैं, उन सभी में डॉ. अंबेडकर की तस्वीर प्रमुखता से दिखाई देती है। वे आज लोकतांत्रिक मूल्यों के संघर्ष के प्रतीक बन गए हैं। उनके विचारों का फलक अति विस्तृत है, यही कारण है कि आज भारत में विद्यमान विभिन्न विचारधाराऐं डॉ. अंबेडकर के वैचारिक मूल्यों से साझा स्थापित करने का प्रयास करती है। स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व का आदर्श डॉ. अंबेडकर के सम्पूर्ण दर्शन को रेखांकित करता है जो आज भी सम्पूर्ण मानव जाति के लिए प्रासंगिक है। वस्तुतः मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर चाहे वह अस्पृश्यता हो, आर्थिक विषमता हो, स्त्री शिक्षा हो अथवा सामाजिक असमानता की महान पीड़ा हो, उनका चिंतन आज के परिप्रेक्ष्य में भी उतना ही महत्वपूर्ण है। वर्तमान पीढ़ी उनके आदर्शों के अनुकरण से एक समतावादी भविष्य का निर्माण कर सकती है।

निष्कर्ष : डॉ. अंबेडकर अपने समय के गर्भ से उत्पन्न वह हीरा थे जिसने अपने विचारों से सम्पूर्ण मानव जाति को प्रदीप्त कर दिया। बहुआयामी प्रतिभा के धनी डॉ. अंबेडकर ने आजीवन राष्ट्र व समाज के लिए चिंतन–मनन एवं लेखन किया। उनके विचार आज भी भटकी हुई मानवता का पथ–प्रदर्शन करते हैं। डॉ. अंबेडकर के विचारों एवं जीवन दर्शन के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वे समानता एवं अधिकारों के लिए आजीवन संघर्षरत रहे। उनकी विचारधारा ने ऐसे संविधान एवं समाज के निर्माण को साकार किया जहाँ सभी को समानता एवं अधिकार सहजता से उपलब्ध हों।

भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन से समान रुप से प्रभावित डॉ. अंबेडकर के वैचारिक निर्माण में बुद्ध, कबीर एवं फुले का सर्वाधिक प्रभाव था। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि डॉ. अंबेडकर की विचारधारा का मूल केंद्र–मानव था और मानव अधिकारों की पुर्नस्थापना और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष उनके जीवन का ध्येय था।

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान)
एस.पी.एम. राजकीय महाविद्यालय,
भोपालगढ़ (जोधपुर) मो. 8104235129

संदर्भः–

1. श्याम नारायण रंगा : विचारधारा की राजनीतिक लड़ाई www-hindi-webdunia- com
2. www-hmoob-in/wiki/ideology
3. विवेक कुमार : बाबा साहेब अंबेडकर के विचारों के स्त्रोत और स्वरुपों की समझ, www-drbrambedakarcollege-ac-in
4. मेरा जीवन तीन गुरुओं और तीन उपास्यों से बना है – बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अंबेडकर, National India News 14/07/2018
5. मनोज कुमार एवं रवि रंजन : डॉ. भीमराव अंबेडकर, कल्पना प्रकाशन, 2021 पृ.2 www-books-google-com
6. सामाजिक न्याय संदेश – अप्रैल 2016, पृ. 8
7. सामाजिक न्याय संदेश–अप्रैल 2016, पृ. 25
8. कंवल भारती : कबीर के निर्गुणवाद से प्रभावित डॉ. अंबेडकर, फॉरवर्ड प्रेस, 1 जुलाई 2017, www-forwardpress-in
9. अभय कुमार और इस्लाम अली (संपादक) : भारतीय राजनीतिक चिंतन, डार्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. 2012, नई दिल्ली, www-books-google-com
10. प्रो. परमानंद सिंह यादव, डॉ. प्रमोद कुमार : डॉ. अंबेडकर और एक मनुवादी विश्लेपण, कल्पज पब्लिकेशन, 2015, नई दिल्ली, पृ. 38, www-books-google-com
11. एल. एस. यादव : जाति भेद का उच्छेद, कानपुर, 1967, पृ. 13
12. धनजंय कीर : डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर जीवन चरित (अनुवाद–गजानन सुर्वे), पॉप्यूलर प्रकाशन, मुम्बई, द्वितीय संस्करण 2019, पृ. 32
13. राव साहब कसबे : अंबेडकर और मार्क्स, पुणे 1985, पृ. 298
14. कंवल भारती : अंबेडकर के चिंतन में मार्क्स, फारवर्ड प्रेस 19–8–2017, www-forwardpress-in
15. मनोज कुमार एवं रवि रंजन : डॉ. भीमराव अंबेडकर, कल्पना प्रकाशन 2021, पृ. 7 www-books-google-com

स्वतंत्र भारत में नारी की परम्परागत तथा विधिक स्थिति : एक दृष्टि

– डॉ. इमरान अहमद

सारांश – प्राचीनकाल में स्त्री जाति को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था उसके जन्म पर उत्सव होते थे जिस प्रकार लड़कों के जन्म पर उत्सव मनाए जाते थे। स्त्री का सतीत्व उसका सबसे बड़ा आभूषण माना जाता था। कन्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्री जाति सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। 19वीं शताब्दी में महिलाओं की स्थिति में सुधार करने के उद्देश्य से विभिन्न सुधार आंदोलन सफलतापूर्वक संपन्न हुए। और इसी के परिणामस्वरूप स्वाधीन भारत में महिलाओं की स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुआ। इन सुधारों के अंतर्गत सर्वप्रथम संविधान निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में महिलाओं को समान अधिकार एवं समान सुविधाएं प्रदान करने का प्रावधान किया गया। इसी के फलस्वरूप भारत सरकार द्वारा महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु विभिन्न क्षेत्र में प्रयास किए गए। इन्हीं प्रयासों से भारतीय महिलाओं की परंपरागत रूप से बिगड़ी पूर्व की सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार हुआ। भारत में महिलाएं अब सभी तरह की गतिविधियां जैसे शिक्षा, राजनीति, मीडिया, कला और संस्कृति, सेवा क्षेत्र विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि में हिस्सा ले रही हैं।

विशिष्ट शब्द : प्राचीन, स्त्री, कन्यावस्था, वृद्धावस्था, संविधान, प्रावधान, गतिविधियां, परंपरागत

शोध विधि : शोध आलेख की प्रविधि बिल्कुल अलग है इसके लिए विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक विधि ज्यादा उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। शोध आलेख के लिए मुख्यता द्वितीयक स्रोतों को आधार बनाया गया है इसके लिए मुख्यता प्रकाशित ग्रंथ, विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छपे लेख, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध कार्य इत्यादि को आधार बनाया गया है।

भूमिका : ईसा पूर्व की छठी शताब्दी जिस प्रकार बौद्धिक एवं चिंतन संबंधित क्रांतियों के लिए समस्त विश्व में एक विशिष्ट स्थान रखती है। 19वीं शताब्दी भी विशेषकर भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण युग है क्योंकि इस युग में प्रायः समस्त एशियाई देशों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक, परिवर्तन हुए। अतः इतिहास में इस युग को निर्माणकारी या नवजागरण काल कहा जाता है। नारी को सबसे अधिक सम्मान वैदिक काल में ही प्राप्त था। जिसमें नारी को पुरुष के समकक्ष माना गया है क्योंकि इस काल में जितने भी कार्य होते थे उनमें महिलाओं को उचित सम्मान दिया जाता था परंतु बाद के काल में नारी की स्थिति में परिवर्तन होती चली गई। समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति में मध्ययुगीन काल के दौरान और अधिक गिरावट आई। इन परिस्थितियों के बावजूद भी कुछ महिलाओं ने राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्रों में सफलता हासिल की। महिलाओं के पुर्नरुत्थान का काल ब्रिटिश काल से शुरू होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक स्त्रियों की दशा निम्न थी इसी कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति बंधन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण इत्यादि। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा उनकी आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, और राजनीति की स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु अनेक कल्याणकारी, योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया। आज महिलाएं आत्मनिर्भर, स्वनिर्मित, आत्मविश्वासी है जिसने पुरुष प्रधान चुनौतीपूर्ण क्षेत्र में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है। वह केवल शिक्षिका, नर्स, डॉक्टर, इंजीनियर, पायलट, वैज्ञानिक, तकनीशियन, सेना, पत्रकारिता जैसे नए क्षेत्रों को अपना रही है। संवैधानिक अधिकारों में विभिन्न कानूनों के द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ। महिलाओं की स्थिति में सुधार ने देश के आर्थिक और सामाजिक सुधार के मायने भी बदल कर रख दिए हैं। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति देख भारतीय सपूतों ने अपनी अहम् भूमिका दी। इन सपूतों मे बाबा साहेब

डॉ. अम्बेडकर को नहीं भुलाया जा सकता। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर न केवल 'दलितों का मसीहा' और 'संविधान निर्माता' थे बल्कि उनकी दृष्टि भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास को लेकर भी थी। बाबा साहेब ने ना केवल संघर्ष किये बल्कि खुद कठिन परिश्रम करके अपनी लेखनी के माध्यम से हुकूमत के समक्ष मजबूती से अपना पक्ष रखते हुए भारतीय महिलाओं को स्वतंत्रता, समानता, सम्पत्ति में उतराधिकार, तलाक, विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध, महिलाओं को प्रसूति अवकाश जैसे अधिकार दिलाये, परिणामस्वरूप महिलाओं में जाग्रति आई। आज उनकी स्थिति काफी बेहतर है। महिलाओं के उत्थान के लिए बाबा साहेब कितने गंभीर थे, ये उनके कथनों से ही ज्ञात होता है 'मैं किसी समाज की तरक्की इस बात से देखता हूँ कि वहां महिलाओं ने कितनी तरक्की की है। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने महिलाओं के लिए ऐसे काम किये जिससे आज भारतीय महिलाएं अंतरिक्ष तक पहुंच चुकी है ।

भारतीय संविधान भी महिलाओं को कानूनी अधिकार एवं उनकी सुरक्षा के प्रावधान की व्याख्या करता है, जिसका उद्धरण अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 15(3), अनुच्छेद 16(1), अनुच्छेद 19(1), अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 23, अनुच्छेद 24 आदि से पता चलता है। आज समाज में भारतीय महिलाओं को उनके अधिकारों को प्रोत्साहित कर उनकी विकास, हितों, सुरक्षा, स्वतंत्रता, समानता, आदि पर विशेष बल दिया जा रहा है ताकि पुरुष प्रधान समाज में भी वे स्वंतत्र होकर हर क्षेत्र में अपना योगदान दे सके।

तथ्य विश्लेषण : स्वाधीन भारत में सर्वप्रथम भारत सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए एक राष्ट्रीय कार्य योजना की घोषणा की। इस योजना के तहत महिलाओं के विकास हेतु विभिन्न प्रकार से प्रयास किए गए महिलाओं की स्थिति को सुधारने हेतु ही भारत सरकार ने महिलाओं को विभिन्न क्षेत्र में व्यवसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की है। जिसमें तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था को भी शामिल किया गया। इस तरह की महिलाओं के प्रति सोच सरकार का एक सराहनीय कदम माना गया है इससे महिलाओं के विभिन्न प्रकार के व्यवसाय के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई और इससे लाभ प्राप्त कर अपने और अपने परिवार तथा बच्चों के भविष्य के निर्माण में मदद करती है।

महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए सरकार ने भौतिक रूप से संरचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया, जिसके अंतर्गत यद्यपि अंग्रेजों के शासन काल में कई प्रकार के अधिनियम पारित किए गए थे, इन सब के बावजूद भी महिलाएं विभिन्न प्रकार की सुविधाओं से वंचित हो रही थी। जैसे गोद लेना, पैतृक संपत्ति तथा विवाह संबंधी सुविधाओं का अभाव आदि । उपयुक्त सुविधाएं केवल पुरुषों को ही लाभ हो रही थी। इस कारण आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा संसद में इन समस्याओं के समाधान हेतु एक बिल प्रस्तुत किया गया जिसे हिंदू कोड बिल कहा जाता है। इस बिल के अंतर्गत कुछ अन्य अधिनियम को भी शामिल किया गया जैसे हिंदू गोद एवं निर्वाह अधिनियम 1956, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, कॉमन हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, कॉमन हिंदू नाबालिक एवं संरक्षण अधिनियम। इस प्रकार उपर्युक्त अधिनियम के अनुसार महिलाओं को पुरुष के समान सुविधाएं प्राप्त हुई। तथा महिलाओं को संपत्ति के समान अधिकार प्राप्त होना, बहु विवाह की समाप्ति, संरक्षण सुविधाएं तथा महिलाओं को गोद लेने आदि प्रायः सभी सामाजिक अधिकारों को शामिल किया गया था। इससे महिलाओं की सामाजिक स्थिति में व्यापक सुधार हुआ उन्हें सब कुछ प्राप्त हुआ जिससे वह वंचित थी। इस प्रकार महिलाओं ने निश्चय ही पुरुष के समक्ष अपनी श्रेष्ठता साबित की। इतना ही नहीं कई सामाजिक और राजनैतिक व शैक्षिक महत्व के पदों पर कार्य करने की परंपरा को भी विकसित किया। समाज में महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधारने तथा उन्हें पुरुषों के समान लाने हेतु भारत सरकार द्वारा एक कारखाना अधिनियम पारित किया गया जिससे महिलाओं की न्यूनतम मजदूरी तय की गई। सरकार द्वारा इस तरह का कदम उठाना महिलाओं को आर्थिक शोषण से बचाना है। अधिनियम अनुसार किसी प्रकार से मजदूरी एवं वेतन भत्तों आदि में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता। 18 वीं शताब्दी की अगर बात करें तो

यह समय अंधकार का युग कहा जाता था क्योंकि इस समय किसी भी प्रकार का शैक्षणिक ज्ञान महिलाओं को नहीं दिया जाता था। इसी प्रकार 19वीं और 20वीं शताब्दी में महिलाओं को शिक्षित करने की नियत से तरह–तरह के शैक्षिक कार्यक्रम सरकारी एवं गैर सरकारी व व्यक्तिगत स्तर पर आरंभ किया गया इस विषय में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में अपनी बात कही थी कि स्त्री का सबसे बड़ा व्यवसाय घर को बनाना तथा संभालना है लेकिन उसकी दुनिया को सिर्फ इसी क्षेत्र तक सीमित नहीं रखना चाहिए और इसी कारण महिलाओं को शिक्षा के लिए विभिन्न स्तर पर कार्यक्रम तैयार किया और उसे लागू कर भारतीय महिलाओं को उच्च से उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था प्रदान की गई ताकि उनका जीवन और बेहतर बन सके। महिलाएं शिक्षित होने से एक अच्छे समाज का निर्माण करने में अहम भूमिका निभा रही है। आज महिलाएं शिक्षा प्राप्त कर समाज में पुरुषों से कांधे से कांधे मिलाकर हर क्षेत्र में अपना नाम कमा रही है ।

सरकार ने ना केवल महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में विकसित किया बल्कि इनकी स्वास्थ्य संबंधी जानकारी समय–समय पर दी तथा शिशुओं की देखभाल के लिए शिशु कल्याण केंद्र की स्थापना भी की जिनका प्रमुख कार्य बच्चों की देखभाल करना है इसके अतिरिक्त ग्रामीण महिलाओं को भी शिक्षित करने तथा उनके स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए भी विभिन्न कार्यक्रम सरकार द्वारा संचालित किया जाता रहा। उदाहरण के लिए प्रौढ़ नारी शिक्षा कार्यक्रम प्रमुख है इतना ही नहीं प्रायः सभी क्षेत्र में विशेष रूप से आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक व राजनीतिक क्षेत्रों में भी आजकल भारतीय महिलाओं को विशेष रूप से उजागर किया जाता है सरकार के अथक प्रयास से प्राप्त उपलब्धियों से आज नारी को निश्चय ही सम्मानित एवं महत्वपूर्ण अंग बना दिया।

निष्कर्ष : इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनकी स्थिति में सुधार हुआ। महिलाएं अब आधुनिक जीवनशैली अपनाने लगी। यह अपने अधिकारों के प्रति पूर्व की अपेक्षा अधिक सचेत हो गई है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियां पुरुषों से प्रतियोगिता करके अपनी प्रतिभाओं का परिचय दे रही है। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों की दशा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन देखा जा सकता है। उन्हें तमाम वह सुविधाएं प्राप्त हो गई है जो पहले पुरुषों को प्राप्त थी। अब केवल वह वोट ही नहीं डालती बल्कि चुनाव में भी खड़ी होती है। अतः आज के संदर्भ में महिलाओं को अपने उज्जवल भविष्य के लिए एक ऐसा समुचित, सर्वमान्य एवं प्रशस्त प्रगति मार्ग चुनना होगा, जिस पर चलकर भारतीय महिलाओं की आने वाली पीढ़ी अपने भावी सपनों को संवार सकें तथा उन्हें साकार रूप देकर अपना भविष्य सुंदर, सुनहरा, सशक्त एवं सुरक्षित बना सके।

सहायक प्रधायापक
यूनीवर्सिटी लॉ कॉलेज विनोबा भावे विश्वविद्यालय,हजारीबाग

संदर्भः–

1. जयापालन, इंडियन सोसायटी एंड सोशल इंस्टीट्यूशन, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स, 2001
2. मिश्रा, आर, सी, टुवर्ड्स जेंडर इक्वलिटी, ऑथरप्रेस, 2006
3. आर, सी, मजूमदार, और ए. डी. पुसलकर, भारतीय लोगों का इतिहास और संस्कृति, भाग–1 भारतीय विद्या भवन ,1951
4. विक्टोरिया, ए, वेलकफ, वूमेन ऑफ द वर्लड : विमेन एजुकेशन इन इंडिया,1998
5. शुक्ला, डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ला, डॉ. अर्चना भारतीय इतिहास में नारी शिक्षा दूध ग्रंथ आधार प्रकाशन।।
6. चतुर्वेदी डॉ. मुरलीधर दु. ला. ए, भारत का संविधान, 1994
7. राजकुमार, डॉ नारी के बदलते आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस 2005
8. भारतीय संविधान अनुच्छेद 14, 15, 16, 19, 21, 23, 39
9. गुप्ता, कमलेश कुमार, महिला सशक्तिकरण, बुक एनक्लेव, जयपुर।
10. सुरेश लाल श्रीवास्तव, राष्ट्रीय महिला आयोग, कुरुक्षेत्र, मार्च 2007
11. व्यास जयप्रकाश, नारी शोषण, ज्ञानदा प्रकाशन, 2003
12. श्रीनिवास,एम. इन., द चेंजिंग पोजीशन ऑफ इंडिया, वूमेन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई, 19781

नई कहानी में नारी अस्मिता

– ब्रजेश उपाध्याय

शोध सारांश – हिन्दी कथाकार ऊषा प्रियंवदा के सन्दर्भ में जब मूल्य मर्यादा और सामाजिक दायित्व के निर्वाह की बात उठती है तो भारतीय जीवन पद्धति में हुए परिवर्तनों की ओर बरबस ही ध्यान खिंच जाता है। भारतीय जीवन पद्धति की दृष्टि से नया काल था। पाश्चात्य जातियों के सम्पर्क में आने के परिणामस्वरूप हमारी जीवन पद्धति में निरन्तर परिवर्तन होता गया और स्वतन्त्र होते–होते हमारी सभ्यता और संस्कृति, प्रत्येक क्षेत्र में, पाश्चात्य जीवन से प्रभावित हो गयी। मूल शब्दः विषमता और भयानकता, अकेलापन और अजनबीपन, संयुक्त परिवार, मानसिक गहराइयां, विशुद्ध प्रेम।

प्रस्तावना – बिंदु अग्रवाल ने नारी की स्थिति के सुधार को आर्थिक आधार से जोड़ते हुए लिखा है 'जिन घरों में बेटा अर्थोपार्जन का मुख्य सहारा है, उनमें बहु को सास से दबकर नहीं चलना पड़ता।[1] इस भावना ने भारतीय जीवन में बड़ी विषमता और भयानकता के साथ आधुनिकता के लिए खींचतान करने की वृति जगा दी। अकेलापन और अजनबीपन हमारे जीवन पर बुरी तरह हावी होने लगा कि व्यक्ति, समाज में रहते हुए भी अलग–अलग इकाई बन गया और उसे अपने अस्तित्व की चिन्ता सताने लगी। आर्थिक बोझ धीरे–धीरे संयुक्त परिवार की कमर तोड़ने लगा। सामाजिकता बिखरने लगी और उसके स्थान पर वर्ग, समूह, गुट, पैदा होने लगे। बड़े नगर, कस्बे यहां तक कि गांव भी इस अलगाव की वृति की लपेट में आ गये और संस्था में संस्था, इसी प्रकार संस्थाएँ पनपने लगी, यहाँ तक कि व्यक्ति अपने आप में ही एक संस्था बन गया। "पति–पत्नी, माता–पिता और पुत्र–पुत्री, भाई–भाई और भाई बहन तक एक–दूसरे के लिए अजनबी और अपरिचित से हो गए और इस प्रकार की विभिन्न स्थितियों पर ढेर सारी कहानियाँ लिखी गयी। इन कहानियों के माध्यम से समाज और संस्कृति के सन्दर्भो में स्वातन्त्रयोत्तर–व्यक्ति की खोज की गयी। नारी इस नवीन खोज का प्रमुख केन्द्र बना दी गयी। समाज में उसे भी अजनबीपन के साथ ऑका जाने लगा।[2] आज का राजनैतिक नेता अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी को भी बलि का बकरा बना लेते हैं। सामाजिक संबंध, प्रेम और सहानुभूति का उनके लिए कोई अर्थ नहीं। उनका व्यवहार सामाजिक बंधनों को कोई महत्व नहीं देता। समाज रहे या भाड़ में जाए उनकी बला से। उन्हें तो हर तरह से अच्छे या बुरे ढंग से अपने स्वार्थों की सिद्धि करनी है। जातीय दंगे भड़काना समाज में विषैला वातावरण उत्पन्न करना। भाई को भाई से लड़ाना, धर्म के नाम पर बलवा करवाना जाति के नाम पर एक जाति को दूसरी जाति से भिड़वाना, साप्रदायिक झगड़े करवाना, यह राजनीतिज्ञों का रोज का कर्म हो गया है। श्री जयप्रकाश नारायण का मानना है कि, सांप्रदायिकता का अंत सिर्फ सरकार को ही नहीं करना हैं जनता का भी इसमें कर्तव्य है और यथार्थ बात तो यह है कि जनता ही इसे मिटा सकती हैं। समाज के प्रत्येक नागरिक का यह धर्म होना चाहिए कि जहां भी सांप्रदायिकता दिखी उसका सर कुचल दीजिए।[3] इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ राजनीतिक नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए सांप्रदायिकता को प्रश्रय देते हैं, लेकिन आज तो हिंदू और मुसलमान सर्वहारा वर्ग हैं। वह सांप्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं करता।[4] उसे रोटी–रोजी और आजीविका की ज्यादा चिंता है।

इनकी लेखनी इस प्रकार देश में चल रहे नारी के संघर्ष के साथ चलती है और नारी की जिंदगी, व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई, अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने की उसकी आकांक्षाओं को आत्मसात् कराती है। इनकी

कहानियां सीधे–सीधे नारी के संघर्ष–बोध से जुड़ती हैं क्योंकि वे उस लड़ाई को अर्थ देती हैं। वे मौजूदा व्यवस्था में आदमी की स्थिति का यथार्थ चित्रण करती हैं, उस यथार्थ की भयावहता, विद्रूपता को तेजी से उभारती हैं। फलतः ये उस यथार्थ के बदले एक नए यथार्थ के नई व्यवस्था, के लिए पुरानी परम्परागत व्यवस्थाओं के खिलाफ आवाज उठाती हैं। निःसंदेह इनकी कथाएं नारी की चिन्तानुकूल संवेदना के स्तर पर बाहरी और भीतरी दुनियाओं से जबरदस्त टकराहट अनुभव करने वाली औपन्यासिक कहानियां मानी जा सकती है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने पुरूष की मानसिक गहराइयों का जितना अन्वेषण किया है, उसके कहीं अधिक वह नारी की मानसिक गहराइयों में उतरने के लिए प्रयत्नशील रहा है। इतने पर भी नारी नामक समस्या उससे सुलझ नहीं पायी है। अतः सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि नारी क्या है और उसे आज तक किन कसौटियों पर परखने का प्रयास किया गया है।[5]

सृष्टि के परिवर्तन के साथ नारी का स्वरूप, उसकी भूमिकाएँ भी परिवर्तित होती रही है परिणामतः नारी का रूप अपने विकास क्रम में एकरूपता नहीं रखता। नारी विषयक प्राचीन मान्यताएँ जिस सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक चेतना और बौद्धिक विकास की भूमि पर विकसित हुई है वह आधुनिक मनोविश्लेषणवादी भूमि नहीं है। वैदिक साहित्य में नारी के उदात्त एवं विशद व्यक्तित्व की अभिव्यंजना हुई है। समाज ने कर्तव्य और अधिकारों का बँटवारा पुरूष और नारी में स्वभावतः रूचि और शक्ति के अनुकूल कर लिया था। उस काल में विद्याध्ययन, संस्कार आदि दोनों के जीवन में सान रूप से होते थे। माता पिता द्वारा उसका लालन–पालन पुत्र के समान ही होता था। विवाह के पश्चात वह पतिगृह की दासी नहीं सम्राज्ञी होती थी।[6]

ऋग्वेद में नारी को 'स्त्री हि ब्रह्मा वभूविथ कहा गया है, उसके लिए मेना शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[7] यास्क के निरूक्त के अनुसार मेना का अर्थ है, मानयन्ति एनाः अर्थात जिनका पुरुष आदर करे । स्त्री शब्द भी लज्जाशीलता का द्योतक है। इसी प्रकार जाया और मातृ शब्द भी बड़े उदात्त भावों के द्योतक है। मातृ के रूप में नारी, नदी, जल, पृथ्वी, आदि के अर्थ में स्वीकृत हुई है। व्याकरणों ने मातृ शब्द का मान. तृच अर्थात मान या आदर के अर्थ में प्रयोग किया है। नारी, मातृ रूप में निर्माणकर्ती होने के कारण आदरणीया मानी गयी।[8] संसार में जितने भी मानवीय संबंध हैं उनमें नारी का संबंध सबसे पवित्र है। नारी हृदय में अपनी संतान के लिए अमिट प्यार व स्नेह होता है। नारी की पूर्णता उसके मातृत्व में ही है।[9] सच्चा मातृत्व वही है जिसमें अन्धा मोह नहीं होता, सच्चे मातृत्व में तो विशुद्ध प्रेम होता है और प्रेम का पादय, त्याग की धरा पर ही पनप सकता है। स्पष्ट है कि वैदिक चिन्तन ने नारी को अत्यन्त उत्कृष्ट एवं उदात्त भाव कर्मभूमि पर प्रतिष्ठित किया। किन्तु धीरे–धीरे वेदों की मन्त्र दृष्टा और पुरूष स्त्रषटा नारी को गृहसीमा में बन्द रखने के प्रयास प्रारम्भ हुए, उसे पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी जाने लगी, उसे गृहस्वामिनी और गृहदासी बनाया जाने लगा।

परिणामतः मध्ययुगीन भारत की वीरगाथाओं तथा रासों में चित्रित नारी वीरमाता, वीरपत्नी और वीर प्रेयसी बनाकर छोड़ दी गयी। नारी बना दी गयी रक्षणीया और पुरूष बन बैठा रक्षक विदेशी आक्रमणों के उस समय उसके जीवन चरितार्थता जौहर में खोजी जाने लगी, पति साधना की अनिवार्यता ने उसके मानसिक विकास को कुण्ठित कर दिया, पतिव्रता धर्म ने नारी का 'धर्मकाममोक्षाणां' पति ने केन्द्रित कर दिया। नारी साधना के क्षेत्र में बाधा समझी जाने लगी।

भक्तिकाल तक पहुंचते–पहुंचते नारी नरक की खान बना दी गयी, उसकी निन्दा की जाने लगी। सन्त व भक्तजन भी नारी को घृणा की दृष्टि से देखते थे। एक स्थान पर भक्त कबीर कहते हैं –

'नारी की झांई परत अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी का गति, ते नित नारी के संग ।।[10]

हिन्दी कथाकार ने अबलाओं, बाल विधवाओं,

परित्यक्ताओं, सतियों और सौतों को लेकर कितनी ही सुधारवादी कहानियाँ क्यों न लिखी हों किन्तु नारी की स्थिति में कोई विशेष सुधार हुआ नहीं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत हो चाहे राजनीतिक आन्दोलन की दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत, गाँधीवादी प्रेम के अन्तर्गत हो या फ्रायड के यौनवादी प्रेम के अन्तर्गत, प्रगतिवादी संघर्ष के अन्तर्गत हो अथवा मनोविश्लेषणवादी संघर्ष के अन्तर्गत, 'नारी, क्रय–विक्रय की वस्तु' से अधिक उपयोगी समझी नहीं गयी। नारी–विषयक भूमियाँ बदली, भूमिकाएँ नहीं। कथाकार इनकी मान्यता भी इन तथ्यों से मेल खाती है। आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ एक साथ दो 'फ्रण्ट' पर ही रही थी। बाहरी लड़ाई थी विदेशी सत्ता के विरूद्ध जिसमें नारी पुरुष का साथ ही नहीं दे रही थी उसे स्फूर्ति, प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर उसका मार्ग निर्देशन भी कर रही थी। इसी के समानान्तर चल रही थी स्वतन्त्रता की भीतरी लड़ाई। इस लड़ाई का क्षेत्र था समाज, जिससे जूझ रहा था देश का सुधारक वर्ग। इस क्षेत्र में नारी ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह किया।

इसीलिए डॉ. सूतदेव ने नारी का सर्मथन करते हुए लिखा दिया "मानव जीवन का सच्चा सौंदर्य इसी नारी नाम में निहित है।[11] एक और तो नारी को लेकर सुधारवादी आन्दोलन हुए। इनसे प्रेरित हिन्दी कथाकार ने विधवा विवाह, बालविवाह, बेमेल विवाह, नारी–शोषण, अशिक्षा आदि अनेक समस्याओं पर आधारित रचनाओं के माध्यम से भारतीय नारी की स्थिति से समाज को परिचित कराया और उसे परिवर्तित होने का आह्वान दिया। दूसरी ओर स्वयं नारी ने प्रगतिवादी कदम उठाया। उसने शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया, नारी स्वातन्त्रय की आवाज उठायी, सामाजिक परम्पराओं, कुरीतियों, रूढ़ियों और नारी–शोषण आदि के विरुद्ध विद्रोह करते हुए, बीसवीं शताब्दी के परिवर्तित दृष्टिकोण के साथ पुरुष के समकक्ष बैठने की घोषणा कर दी। हिन्दी कहानीकार ने नारी की इस स्वतन्त्र भूमिका पर आधारित अनेक कथाएँ लिखी और उसे अपनी स्थिति सुधारने की दिशा में नैतिक सहयोग दिया।[12]

विदेशी शासन काल में साहित्यकार ने नारी का चित्रण शासकीय मनोवृतियों के अनुरूप किया, किन्तु धीरे–धीरे परिस्थितियों और प्रवृतियों ने पलटा खाया। राष्ट्रीय नवजागरण ने जनमानस में नवीन चेतना का संचार किया। जीवन, वासना की रंगीनियों से हटकर वास्तविकता की कठोर भूमि पर पैर जमाने लगा। नारी और नारी विषयक मान्यताएँ नवीन दिशाओं का स्पर्श करने लगी। आधुनिक युग की नारी अपने नारीत्व की मूल भूमिका और भावना के साथ वही नहीं है जो वेदों उपनिषदों के युग की गार्गी–मैत्रेयी, पौराणिक युग की सीता– सावित्री, मध्ययुग की संयोगिता पद्मिनी अथवा विक्टोरिया युग की पण्डिता रमा बाई थी। 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही वह पुरातनता से विद्रोह करना सीख गयी थी। अन्धविश्वासों के प्रति अविश्वास, परम्पराओं के प्रति आक्रोश, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और गृहित सामाजिक बन्धनों तथा नैतिकताओं के प्रति अवमानना लेकर उसने समस्त पुरातनता को झकझोरना शुरू कर दिया। अपनी इस नवीन चेतना से सम्पन्न होकर सबसे पहले नारी ही लक्ष्मीबाई के रूप में भारतीय स्वाधीनता संग्राम में कूदी। नारी पुरुष के साथ चलकर राष्ट्रीय चेतना का अनिवार्य अंग बन गयी। हिंदी साहित्यकार ने सुधारवाद, मानववाद, गांधीवाद, समाजवाद, छायावाद, प्रगतिवाद इत्यादि अनेक नवीन सन्दर्भों में उसे विभिन्न राष्ट्रीय, सामाजिक वैयक्तिक भूमिकाओं पर चित्रित किया। नारी द्वारा भी नारी के सुन्दर, संश्लिस्ट और विश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किये गये। कथाकार ने नारी को एकनिष्ठ प्रेम करने वाली के रूप में चित्रित करके उसके त्याग व बलिदान की भावना को प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर उसको ऐसी प्रेमिकाओं के रूप में दर्शाया है जो अपने प्रेमी से तृप्त न होने पर किसी अन्य के प्रति आसक्त हो जाती है। 'स्त्री–पुरूष का आकर्षण एक प्राकृतिक सत्य है। इसी आकर्षण पर

सृष्टि का विकास अवलंबित है। इसीलिए आदि काल से नर–नारी के संबंधों में प्रेम तत्व को अनिवार्य माना गया है।' कृष्ण की राधिका राधा वल्लभीय सम्प्रदाय के ललित किशोरी, युगल किशोरी, रसिका प्रिया आदि रूपों को त्यागकर प्रियप्रवास की राष्ट्र बालिका बनकर कष्ण को आह्वान देने लगी। उर्मिला नारियों का नेतृत्व करते हए अत्याचारी शासक रावण को चुनौती देने लगी, कामायनी के मधुर स्वर, कुटिया में, निरन्तर गूंजने लगे, 'चल री तकली धीरे–धीरे, प्रिय गये खेलने की अहेर।' इसी के समानान्तर, "वह तोड़ती पत्थर, मैंने देखा उसे इलाहाबाद के पथ पर'' अथवा 'अबला भी नारी है, सबला भी नारी है, नारी है शक्ति, भक्ति, नारी अनुरक्ति है जैसे क्रान्तिदर्शी विचार जनमानस में उभरने लगे। परतन्त्रता की छटपटाहट और स्वतन्त्रता की तीखी प्यास से आकुल व्याकुल नारी की आत्मा ने घोषणा की We are neither ethical damsels nor dolls] nor bundles of passions and nerves- We are as much human beings as men or and we are filled with the same urge for freedom- तात्पर्य यह है कि अपने आधुनिक परिवेश में नारी पुरूष के समान और समकक्ष स्वातन्त्रय चेतना से सम्पन्न होकर जीवन के नवीन आयामों में अपनी विशिष्ट इकाई का निर्माण करने लगी। वस्तुतः आधुनिक नारी के लिए पतिव्रत्य धर्म की परिभाषा बदलने लगी है। "आज की पढ़ी–लिखी नारी पौराणिक पतिव्रता का नकाब उतारकर स्वतंत्र व्यक्तित्व की आकांक्षा करती है।[13]

भारत में अंग्रेजी राज्य को स्वातन्त्रय संग्राम की पहली चिनगारी से भस्मसात करने का प्रयास झांसी की रानी लक्ष्मीबाई अर्थात् एक नारी ने ही किया था और तब से लेकर स्वातन्त्रय प्राप्ति के प्रथम क्षण तक आजादी की बलिदान परम्परा में अनगिनत नारियों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अपनी आहुति देकर स्वतन्त्रता की साड़ी को सुहागिन की चुनरी का रंग दिया है। इस युद्ध में नारी ने मॉ, बहिन, बेटी, पत्नी आदि अनेक भूमिकाओं पर, अपना और प्रियजनों का बलिदान दिया। वह स्वयं बलिवेदी पर चढ़ी, अत्याचारों की चक्की में पिसी, अपमानित, अनाहत, अनावृत की गयी, हँसते–हँसते उसने सब सहा, किन्तु इतनी महान परम्परा को देकर भी, उसे स्वातन्त्रय वीरों की परम्परा में उचित स्थान नहीं दिया गया। साहित्यकार ने उसे, याद किया अवश्य, किन्तु संस्कारों से अलग होकर नहीं। स्वर उसका भी वही रहा। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' से प्रारम्भ करके 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' पर अर्द्धविराम लगाता हुआ साहित्य अन्ततः पहुँचा 'औरत एक फरेब' खाली जेब है तक।[14]

समाजशास्त्र में निर्धनता उस दशा को कहते हैं जिससे कोई व्यक्ति या तो अपर्याप्त आमदनी के कारण या विवेकहीन व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को इतना ऊंचा नहीं रख पाता जिसके द्वारा उसकी रिक व मानसिक क्षमता कायम रह सके और वह अपने तथा अपने आश्रितों के लिए ऐसा स्तरन बनाए रख सकें जो उस समाज के स्तर के अनुकूल हो जिसका वह सदस्य है।[15] दूसरे शब्दों में 'यदि किसी मनुष्य को जीवन की आवश्यकताएं, सुविधाएं और मनोरंजन के साधन समुचित परिमाण में उपलब्ध न हो तो उसे हम निर्धन कह सकते हैं।[16] भारत में जिस व्यक्ति के पास खाने को दो समय का भोजन, रहने को मकान और पहनने को कपड़ा नहीं, वह निर्धन है। डॉ. अग्रवाल के अनुसार, एक निर्धन व्यक्ति को उसकी गरीबी के कारण, भरपेट व संतुलित भोजन नहीं मिल पाता। उसका स्वास्थ्य कमजोर होता है। उसमें काम करने और कमाने की शक्ति कम होती है। अतः उसे कम आय मिलती है और वह गरीब बना रहता है।[17] इस रूप में भारत की अधिकांश जनता गरीबी के स्तर से नीचे का जीवन जी रही है।

अर्थ तत्व ने भी प्राचीन मूल्यों को बदलने में बहुत योगदान दिया है। यही कारण है कि उषा प्रियंवदा की कहानी 'जिंदगी और गुलाब के फूल' में कमाने वाली बहन के सामने बेरोजगार भाई छोटा हो गया है। नौकरी

छूटने पर मंगेतर भी किसी दूसरे की हो जाती है। सुदर्शन चौपड़ा की कहानी 'जाले' का बाप अपनी कमाऊ बेटी के स्वछंद यौन संबंधों को सहता रहता है, किंतु उसका विवाह नहीं करता। मनू भंडारी की कहानी 'बाहों का घेरा' में मित्तल की पूंजी अर्थोपार्जन और अर्थसंग्रहण में लगे पति की उपेक्षा के कारण किसी के भी बाहों के घेरे में कसे जाने की इच्छा करते हैं।[18]

इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता संग्रामों में नारी ने पुरूष से कहीं अधिक गम्भीर और महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभायीं। उसने एक साथ दो संग्रामों में भाग लिया। बाहरी और भीतरी दोनों संग्रामों में उसका नारा रहा 'स्वतन्त्रता' इन दोनों संग्रामों में वह सैनिक नहीं, सेनापति बन कर लड़ी। हिन्दी कहानियों में नारी की इन भूमिकाओं का चित्रण व्यापक पैमाने पर किया गया है ।

फलतः निति भावना की प्रतिक्रिया स्वरूप अपेक्षिता नारी श्रृंगार की केन्द्र बिन्दु बन गयी । अपनी शारीरिक निधि की रक्षा के लिए पुरुष के सम्मुख आत्मसमर्पण करके निश्चिन्त सी हो गयी। पुरूष ने कवि बनकर उसके बाहय् सौन्दर्य के प्रशंसात्मक गीत गा–गाकर उसके व्यक्तित्व को स्थूल रूप तक ही सीमित कर दिया।

निष्कर्ष – वह अपनी रूप माधुरी में विभार हो गयी। रंगीले कवि नारी के मोहक चित्र खींचते रहे। कलाकार की तूलिका नारी की उलझी लटों में उलझ गयी, वह नयन कटाक्षों से कटकर, उन्नत उरोजों से अटक कर उसके घोर विलासी रूप को चित्रित करती रही। इन चित्रों ने उसके सात्विक रूप को विस्मृत कर दिया। उसका सत्यम शिवम सन्दरम का रूप भौतिक सौन्दर्य के मादक रंगों से रंग गया। पौराणिक काल में गौतम, नारद, विष्णु आदि ने नारी की स्वतंत्रता का घोर विरोध किया। दूसरी ओर धर्म की महता बढ जाने के कारण हमारी सामाजिकता का विधान हमारे धर्माचार्य ही करने लगे थे। उन्होनें मोक्ष प्राप्ति के लिए वैराग्य और सन्यास को महत्व दिया और नारी को वैराग्य एवं संसार के मार्ग में बाधा समझकर उसकी भरसक निंदा की। तैतरीय संहिता, मैत्रायनी संहिता, काश्क संहिता, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि में नारी के प्रति अत्यंत ही घृणित दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। "योगवसिष्ठ'' में तो कामिनी के त्याग को ही स्वर्ग प्राप्ति के साधनों में सम्मिलत कर दिया गया।

बीएसएफ सीनियर
सेकेंडरी स्कूल, जम्मू

संदर्भः–

1. हरीश पाठक, सरेआम (गुम होता आदमी), पृ. 110
2. हरीश पाठक, शहर की मौत (गुम होता आदमी), पृ.15.16
3. डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतलंकार समाजशास्त्र के मूल तत्व, पृ. 614.615
4. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, पृ0 665
5. ए.एन.अग्रवाल, भारत का आर्थिक विकास एवं आयोजन, पृ. 17
6. राहुल भारद्वाज, नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन, पृ. 104
7. डॉ. सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नारी, पृ0 225
8. डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, सामाजिक विघटन, पृ. 287.288
9. कमलचंद वर्मा, रोपनी के लिए (बेदखल), पृ. 34
10. कमलचंद वर्मा, चिंगारी (बेदखल), पृ0 86
11. डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतलंकार समाजशास्त्र के मूल तत्व, पृ. 614.615
12. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, पृ. 665
13. ए.एन.अग्रवाल, भारत का आर्थिक विकास एवं आयोजन, पृ. 17
14. राहुल भारद्वाज, नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन, पृ. 104
15. हरीश पाठक, सरेआम (गुम होता आदमी). पृ. 110
16. हरीश पाठक, शहर की मौत (गुम होता आदमी), पृ. 15–16
17. डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतलंकार समाजशास्त्र के मूल तत्व, पृ. 614.615
18. डॉ. सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नारी, पृ. 225

उदयप्रकाश के साहित्यिक विकास की दिशा व आशाएँ

– उपदीप कौर शोधार्थी
– डॉ. ज्ञानीदेवी गुप्ता निदेशक

शोध सार – उदय प्रकाश ने अपने समकालीनों की इस फार्मूलाबद्धता को तोड़कर हाड–मांस के जीवन्त चरित्रों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने की पहल की। उदय प्रकाश जी समकालीन समय के सशक्त यथार्थवादी साहित्यकार, फिल्मकार, पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। उनका साहित्य विशेषतः कहानियां, तत्कालीन परम्पराओं एवं विडम्बनाओं पर प्रहार करती हैं। वे राजनीति से लेकर बौद्धिक तबके पर छाये जातिवाद, ब्राह्मणवाद व पूंजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति पर कटाक्ष करते हैं। वे अपने साहित्य में कमजोर, दलित, पीड़ित, शोषित व्यक्ति का चेहरा दिखाते हैं। आम आदमी को नोंच–नोंच कर खाने वाली जितनी भी शक्तियां, ताकतें एवं षडयंत्र किए जा रहे हैं उदय प्रकाश जी उनके विरोध में खड़े हैं। इन्होंने जादुई यथार्थवाद की पद्धति का सुन्दर उपयोग भी अपनी कहानियों में किया है। उदय प्रकाश की रचनात्मक उपलब्धियों के आरम्भिक आकलन में ही. कहानी संग्रह 'दरियाई घोड़ा' (1982) की समीक्षा करते समय ही जिन सम्भावनाओं को देखा था, वे सही साबित हुई। अभी उनकी रचनाशीलता का चरमोत्कर्ष शेष है। उनके 'चीनी बाबा' उपन्यास में खोई हुई मानवीय अस्मिता के ऊपर गहरी चिंता व्यक्त की है। मानवीय व नैतिक मूल्यों के क्षरण पर भी वे चिंतित हैं। उनकी कहानी 'टेपचू' भी उन्हें उत्कृष्ट रचनाकार सिद्ध करती है। टेपचू कहानी में लेखक ने मध्यम वर्ग की संस्कृति के विरोध को अपनी रचनात्मक ताकत के साथ उजागर किया है। उदय प्रकाश जी ने अपने साहित्य में तत्कालीन समाज में व्याप्त समस्याओं के कड़वे यथार्थ का चित्रण किया है। उनके साहित्य को पढ़ना भयानक यथार्थ की यातनाओं की सुरंगों से गुजरने के समान है। उन्होंने अपने जीवन के संघर्ष एवं लोक अनुभवों को साहित्य में उभारा है। उनकी कहानियों में कलात्मक अनुभव अद्‌भूत और कथ्य भी बेजोड़ है।[1]

बीज शब्द : सभ्याचार, कलात्मकता, रचनाशीलता का चरमोत्कर्ष, जादुई यथार्थवाद, समकालीन

प्रस्तावना – अपने समय के यथार्थ, उसके बदलते रूपों एवं दबावों को देखने, जानने व उसका वृतांत रचने तथा व्यक्ति व सभ्याचार की विभिन्न संरचनाओं में परिवर्तित होते मानवीय सरोकारों को सूक्ष्मता एवं कलात्मक सूझ के साथ आख्यात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति देने की विलक्षण क्षमता व अंतदृष्टि साहित्यकार उदय प्रकाश की प्रतिभा में हैं। उदय प्रकाश की कहानियों में मध्यवर्ग का एक ऐसा वर्ग बड़ी प्रामाणिकता के साथ दिखाई पड़ता है जो मानवीय जीवन अपने संघर्षों को संभालने की कोशिश में कभी तो मानवीय मूल्यों का पक्षधर बनकर भयावह यथार्थ से टकराता है। हिन्दी भाषा के पतन को उन्होंने कविता संग्रह 'एक भाषा हुआ करती है' में दिखाया है। आज लोग अंग्रेजी बोलने में गर्व महसूस करते हैं और हिन्दी बोलने पर उन्हें शर्मिंदगी महसूस होती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति के निजी व सामाजिक जीवन के उलझावों व द्वंद्वों, उसके व्यवहारवाद व विभ्रमों की बारीकी से पड़ताल इनकी कहानियों में प्रकट होती है।[2]

'मंजु वनिता' की कहानी 'सागर और सीपियाँ' में भी पुरूष का व्यवहार स्त्री के प्रति बहुत घिनौना दिखाया गया है। इस कहानी में ''स्मिता'' एक गरीब परिवार की लड़की है। 'सागर' उच्च वर्ग से संबधित है। वह स्मिता से उसकी सुंदरता व पढ़ाई के कारण शादी कर लेता है। शादी के बाद स्मिता दो बेटियों को जन्म देती हैं जो पुरुष प्रधान समाज के विपरीत है। इसी

कारण "सागर'' स्मिता पर अत्याचार करता है। स्मिता के आवाज उठाने पर वह गुस्सा हो जाता है। स्मिता कहती है तुमने क्यों मेंरी जिन्दगी बर्बाद की? क्यों की थी मुझसे शादी? क्यों किया था ऐसा घिनौना मजाक? मैंने कब तुम्हारे आगे हाथ जोड़े थे बोलो? मै जानती थी। इसका कोई उत्तर उनके पास नहीं था लेकिन मौन रहना उनके पुरूषत्त्व के खिलाफ था। वह मेरी बातों का जवाब हाथों से देने लगे।[3] इसी कारण "सागर गुस्से में स्मिता पर अत्याचार करता है। खाने की मेंज पर स्मिता के बैठते ही रोटी उठाकर नीचे फैंक देता है। गुस्से में आकर स्मिता से कहता है 'हरामखोर' मुझे तमीज सिखाती है अभी ठीक करता हूँ।[4] समाज की आर्थिक स्थिति ठीक होने के बाद भी स्त्री पुरुष के प्रभाव से नहीं बच पाई है।[5] उदय प्रकाश प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। उनके दूसरे काव्य संग्रह 'अबूतर कबूतर' में प्रेम और मानवीय राग की अनेक कविताएं रचित हैं। उदय प्रकृति और पर्यावरण के प्रति बेहद संवेदनशील हैं। पेड़ पौधे, खेत, जंगल, पशु–पक्षी के संरक्षण संवर्धन के लिए वे सजग व सचेत हैं। 'रात में हारमोनियम' काव्य संग्रह में उदयप्रकाश जी मानवीय मूल्यों, प्रकृति पर्यावरण, रिश्तों–सम्बन्धों, शाश्वत रागात्मकता को बचा लेने की अर्ज करते हैं। आज हमारी संस्कृति, जीवन शैली, वेशभूषा, राग–रंग लुप्त होते जा रहे हैं, जिसके विरोध मे उदय प्रकाश की रचनाएं जोरदार ढंग से अपनी आवाज बुलंद करती हैं।

वरिष्ठ आलोचक और कसौटी के सम्पादक डॉ. नन्दकिशोर नवल के अनुसार–उदय प्रकाश कवि और कथाकार दोनों एक साथ हैं। वे कवि पहले कथाकार बाद में। कवि के रूप में वे राजेश जोशी और अरूण कमल के सहयात्री हैं। उदय प्रकाश ने अपनी कहानियों में बाजारीकरण के खिलाफ खूब लिखा है पर अब वे स्वयं उसकी गिरफ्त में हैं। यह उनका लम्बा कहानी संग्रह 'पीली छतरी वाली लड़की' (2001) में ब्राह्मणवाद और जातिवाद पर करारा व्यंग्य है। उन पर आजकल फिल्म या सीरियल बनाने की भावना हावी है। क्योंकि आज की कविता बाजारीकरण का शिकार है तथा व्यावसायीकरण बड़े से बड़े रचनाकार को नष्ट कर देता है।[6]

उदय प्रकाश ने कहानी के नए प्रतिमान स्थापित किए हैं। वे अपनी कहानियों में एक कुशल किस्सागो की तरह बारीक पच्चीकारी से इतिहास–कल्पना, मिथक–यथार्थ, स्मृति–संवेदना को इस तरह परस्पर गूंथते है। उनकी कहानियां साहित्यिक जगत् में जितनी प्रासंगिक हैं, समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से भी वे एक प्रबुद्ध, सचेत रचनाकार की कलम से निकला अपने समय का प्रमाणिक दस्तावेज प्रतीत होती हैं। कहानी बुनते हुए वे स्थित्तियों, पात्रों, भाषा का पूर्ण स्वतंत्रता से प्रयोग करते हैं। उनमें मुक्तिबोध जैसी बैचेनी और परसाई जैसी तटस्थता है।[7]

उदय प्रकाश में अपने समय की गहरी परख व संवेदनशील समझ है। उदय का प्रश्नाकुल मन दरअसल उसी उपेक्षित मनुष्य की वेदना से पीड़ित मन है– जिसे तमाम कार्य व्यापार में हाशिये पर धकेल दिया हैं। इस दौर में तेजी से नष्ट होती जा रही चीजों एवं पर्यावरण को बचा लेने की ललक उदय के भीतर एक बेचैनी पैदा करती है।

उदय प्रकाश जी को हर रचना में खुद के द्वारा निर्मित दीवार तोड़नी पड़ती है। कभी वे सफल होते हैं। कभी नहीं। आलोचक सफल मान लेते हैं या कहेंगे कि चूक गये। आगत की संभावनाएं उदय की स्मृतियों, उनके भीतरी स्वप्निल गहराई और अवचेतन में है। निजी तौर पर हम उन्हें संघर्षवान इंसान के रूप में जानते हैं। संघर्ष रचनाकार को मरने नहीं देता है। बस उसे मन की अतुल गहराइयों में परत–दर–परत जमा तलछट को टटोलना होता है। उदय प्रकाश की रचनात्मकता अप्रत्याशित है। उनका चरमोत्कर्ष तमाम

शैलियों की अब तक की रचनाओं में से ही प्रस्फुटित हो सकता है।[8]

आज उनकी समग्र रचनात्मक ऊर्जा भूमण्डलीकरण, निजीकरण, बाजारीकरण, उपभोक्तावाद, विज्ञापनवाद से उत्पन्न सांस्कृतिक, व्यवहारिक व नैतिक विकार रोकने में हैं।

1990 के बाद उनके कहानी संग्रहों में और अंत में 'प्रार्थना' (1994), 'पॉल गोमरा का स्कूटर' (1997), 'पीली छतरी वाली लड़की' (2001), 'दत्तात्रेय के दुःख' (2002) एवं कविता संग्रह 'रात में हारमोनियम' (1998) और निबंध 'ईश्वर की आंख' प्रकाश में आये। इन सभी में सांस्कृतिक बदलावों को गंभीरता से रेखांकित किया गया हैं। तथाकित उत्तर आधुनिक समय का यथार्थ बड़ा ही निर्मम, क्रूर, और अशिष्ट है। भूमण्डलीकरण और वैश्विक बाजार के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के क्रूर पंजों में हमारा देश पुनः उपनिवेश बनने की ओर अग्रसर है। लोकजीवन, देशज परम्पराएं, देशी संस्कृति विकृत होती जा रही है। गाँवों के लोग शहर की ओर आकर्षित होकर पलायन कर रहे हैं। खेत–जंगल–पेड़–पौधे अंधाधुंध गति से नष्ट किये जा रहे हैं। हवा को विषैला बनाया जा रहा है, नदी नालों के पानी में जहर घुलता जा रहा हैं।

निम्न मध्यवर्ग का जीवन संघर्ष जटिल हो गया है। रोजगार के अवसर समाप्त हो रहे हैं। सत्ता, व्यवस्था, प्रशासन भ्रष्ट और अराजक हो गये हैं। पैसा मनुष्य पर इतना हावी हो गया है उसकी प्राप्ति के लिए लोग नैतिकता–अनैतिकता तक की परवाह नहीं कर रहे हैं। उदय प्रकाश इस हालात से सक्षुब्द, व्यथित एवं उद्वेलित हैं। उनकी रचनाएं इन्हीं मानव विरोधी, संस्कृति विरोधी समय के प्रतिरोध में खड़ी होती हैं। उदय जी की कविताएं भी सच का आभास दिलाती हैं क्योंकि वे सच के पीछे हुए यथार्थ की तलाश करती हैं। वे कहते है कि–'जब सारी सताएं साथ छोड़ देती है तो यह कविता ही है जहां अपनी आवाज सुनाई देती है, कविता कभी भी पराजय, विध्वंस, आत्महीनता एवं गहरे दुःखों के पल में भी हाथ व साथ नहीं छोड़ती।

कहानियों के बाहर वे यथार्थ को उसके संश्लिष्टतम रूप में समेटते हैं तो कविताओं में यह जटिल यथार्थ धीरे–धीरे खुलता है। कविता में उनकी चाक्षुक संवेदना आसानी से ऐसे बिम्ब गढ़ लेती है जो भय से लेकर असुरक्षा और संदेह के साथ–साथ अस्तित्व के संकट को मूर्त करने में समर्थ हो जाती है तथा हमारे जैसे पाठक उनकी कविताओं की प्रतीक्षा करते हैं।[9]

उदय प्रकाश पर पिछले कुछ वर्षों से लगातार षड्यंत्र के तहत साहित्यिक आक्रमण हो रहे हैं। जिसके संबंध में अजीत राय से साक्षात्कार में उनका कहना है– 'मुझे खुद यह नहीं पता कि ऐसा क्यों हो रहा है। मैं आपसे और साहित्य के पाठकों से भी इसको जानना चाहता हूँ। अपने समय के रचनाकारों और उन अखबारों और पत्रिकाओं के सम्पादकों से भी, जहां इन आक्रमणों को मंच मिलता है। जहां तक मेरे जीवन और व्यक्तित्व आदि का सवाल हैं उसका अधिकांश हिस्सा साहित्य या अन्य कलाओं के साहचर्य और अध्ययन आदि पर ही आधारित रहा हैं। गोष्ठियों, सभाओं में भी आपने शायद ही मुझे कहीं पाया हो। विश्वास कीजिए मैं किसी प्रतिद्वंदिता या होड़ में न कभी पड़ा हूँ न ही उसमें मेरी कभी कोई रूचि रही हैं कि इसके साथ किसी भी अन्य रचनाकार की तरह मेरी भी यह आकांक्षा रही हैं।

निष्कर्ष : उदय प्रकाश की कहानियां बने बनाये फार्मूलों का उपयोग नहीं करती। परिणामस्वरूप उनकी कहानियां यथार्थ को एक नई दृष्टि देती हैं। उनकी कहानियां सामाजिक ढाँचे की अन्तर्व्यवस्थाओं के अन्यायपूर्ण एवं अमानवीय व्यवहार रहस्यों का उद्घाटन करती है। भारतीय समाज की तमाम राजनीतिक सामाजिक कार्य प्रणालियों में जो घट रहा हैं, जो इन्सानी कद्रों–कीमतों की टूटने की प्रक्रिया यहां चल

रही है, शोषण तंत्र का जो सोपानात्मक ढाँचा यहां बन चुका है, इन सबसे बीच में एक व्यक्ति अपनी अहमियत को बचाये रखते हुए, अपने मानवीय अस्तित्व को सुरक्षित रख कर, बने रहना एक प्रकार की जद्दोजहद है।[10]

उदय प्रकाश का रचनात्मक चरमोत्कर्ष भविष्य के गर्त में है जिसका बीजारोपण हो चुका है। अभी हमें उनसे काफी आशाएं हैं। उनके लगभग तीन दशकों की विकास यात्रा का अध्ययन कर हम आगत भविष्य के सम्बन्ध में अनुमान लगा सकते है। उदय की रचना का प्रखरतम रूप अपने समय की चुनौतियों, समाज के अन्तर्विरोधों, सांस्कृतिक विशिष्टताओं की वेश–भूषा, व्रत–त्यौहार, घर–परिवार से जुड़ाव तथा प्रकृति, पर्यावरण, परिवेश की नैसर्गिकता का संरक्षण एवं मानवता की अस्मिता की रक्षा से सम्बन्धित है। उन्होंने मानवीय व्यवहारों की शुचिता, व्यक्तिगत और सार्वजनिक कर्तव्यबोध के साथ नैतिक मूल्यों के संवर्धन का प्रबल स्वर उनके साहित्य में दिखाई देता है। उनका साहित्य हमें भविष्य का समय दिखाता है।

'कल के लिए' के सम्पादक डॉ. जयनारायण का मत है–'प्रायः उदय प्रकाश को एक सफल साहित्यकार के रूप में देखा जाता है, पर उनकी कविताएं उनके रचना संसार की गहराई को मापने में ज्यादा कारगर सिद्ध हो सकती है। अच्छी कविता के लिए एक सम्मोहक भरी भाषा की भी आवश्यकता होती है। उदय प्रकाश की कविताओं की भाषा में यह सम्मोहन अपने साथ एक यकीन लेकर आता है।

उनके अनुसार जब तक उसका अर्थ नहीं समझा जाता कविता तब तक पाठक को अपनी संरचना से संतुष्ट नहीं कर पाती पानी एवं हवा में झुलती है, कई बार बेहद खूबसूरत भाषा में रची गई कविताएं सच से दूर प्रतीत होती है, उदय ने ऐसी कविताएं कम रची हैं। उनकी ज्यादातर कविताएं सच को व्यक्त करती है। इसी सच और यकीन का आज हमारी कविताओं में अभाव होता जा रहा है।

डॉ. ज्ञानी देवी गुप्ता हिन्दी विभाग
गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो,
भठिण्डा, (पंजाब)

संदर्भः–

1. डॉ. चंचल चौहान, साक्षात्कार (वरिष्ठ समीक्षक एवं पत्रकार, नई दिल्ली)
2. सरबजीत, पल प्रतिपल, मार्च–जून 1998
3. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ. 59
4. एस. आर. हरनोट, मिट्टी के लोग, पृ. 39
5. डॉ. नन्द किशोर नवल, साक्षात्कार (वरिष्ठ आलोचक एवं सम्पादक, नई दिल्ली)
6. जनसत्ता, 4 दिसम्बर 2005
7. दिनेश श्रीनेत, साक्षात्कार (पत्रकार, दैनिक अमर उजाला, नई दिल्ली)
8. डॉ. जयनारायण, साक्षात्कार (वरिष्ठ सम्पादक. कल के लिए, हंस, नई दिल्ली)
9. नई दुनिया. रविवार 21 फरवरी 1999
10. जयप्रकाश सावंत, साक्षात्कार (जनसत्ता, नई दिल्ली, फरवरी 1999)

महात्मा गाँधी, सामाजिक परिवर्तन एवं दलित समाज

– रेणुका चौधरी

सारांश–भारतवर्ष का अतीत शोषित व पीड़ित समाज की वह दशा है जहां जाति भेद, असमानता, वर्ग–वर्ण व्यवस्था के कारण व्यक्ति का अस्तित्व दब सा गया है। जो व्यक्ति दलित समाज से सम्बंधित है उस व्यक्ति को भारतीय समाज में हीन भावना से देखा जाता है। वर्तमान समय में भी दलित समाज की यही सबसे बड़ी पीड़ा है। महात्मा गाँधी ने दलित समाज के प्रति सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए स्वयं के अमूल्य विचारों से परिवर्तन लाने के प्रयास किये। गाँधीजी ने 'अस्पृश्यता' को समाज का कलंक कहा। आजादी के 75 वर्षों के बाद भी दलित समाज की वही शोषित व पीड़ित स्थिति है। दलितों के लिए कानून बनाये गए, शिक्षा का दायरा बढ़ाया गया व समाज में अनेकों आमूल चूल परिवर्तन आये लेकिन दलित समाज के प्रति वही

सोच व नजरिया है। इस शोध पत्र में दलित समाज के प्रति गाँधी जी के अमूल्य विचारों का उल्लेख किया गया व दलित समाज के उत्थान के लिए क्या–क्या कार्य किये गए। वर्तमान समय में गांधीजी के विचारों पर अमल करके परिवर्तन लाया जा सकता है।

संकेताक्षर–अस्पृश्यता, दलित समाज, शोषण, अत्याचार

भारत में चातुर्यवर्ण व्यवस्था का विशिष्ट योगदान रहा है। ये चारों वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शुद्र के रूप में जाने जाते है। ये एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था थी, परम्परा से यह व्यवस्था धीरे–धीरे जन्म से जुड़ गयी। जिस परिवार में आपका जन्म हुआ, उस परिवार की जाति आपकी जाति है धीरे–धीरे यह जाति व्यवस्था रूढ़ हो गयी। समय के साथ जातियों में ऊंच–नीच का भाव बढ़ने लगा, अस्पृश्यता, छुआछूत और एक–दूसरे का अनादर आदि समस्याएं पैदा होने लगी। गाँधीजी के विचार इतने श्रेष्ठ थे कि हमारे संविधान में उनके विचारों को सम्मान दिया गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 में 'अस्पृश्यता' से सम्बंधित है। हमारा संवैधानिक अधिकार भी है और मौलिक अधिकार भी है, लेकिन अस्पृश्यता हमारे समाज में समस्या की जड़ है ।

दलित शब्द से तात्पर्य–भारतीय समाज में दलित के लिए विभिन्न शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। अछूत, हरिजन, पंचम आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। जिस वर्ग को समाज में अधिक शोषित किया जाता है वह दलित वर्ग के अंर्तगत आता है। दलित शब्द से तात्पर्य जिसका दलन हुआ हो। भारतीय संविधान में इन जातियों को अनुसूचित जाति के नाम से जाना जाता है। दलित शब्द का प्रारंभिक प्रयोग करने वालों में स्वामी विवेकानंद महात्मा फूले एवं रानाडे का नाम लिया जाता है। डॉ अंबेडकर ने भी 'दलित' शब्द को अधिक उपयुक्त कहा है क्योंकि दलित एक सटीक शब्द है जो संघर्ष की प्रेरणा देता है।

महात्मा गाँधी एक महान विचारक थे उनका जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ। गाँधी जी ने अपने विचारों और कार्यों व अहिंसावादी विचारों से पूरे विश्व की सोच बदल दी। गाँधीजी का एकमात्र लक्ष्य शांति स्थापित करना। भारत व दक्षिण अफ्रिका सहित कई देशों में स्वतंत्रता और शांति के ऐतिहासिक आंदोलनों को एक नई दिशा प्रदान की।[1]

महात्मा गाँधी जी छुआछूत के खिलाफ थे, उनके विचार थे कि ईश्वर ने सभी को समान बनाया है तो समाज के लोगों के बीच यह भेदभाव नहीं होना चाहिए। एक बार वे दक्षिण भारत के दौरे पर थे तब उनका एक नया शब्द से सामना हुआ और वो शब्द था 'पंचम'। पंचम शब्द संगीत की भाषा में अच्छा माना जा सकता है लेकिन दक्षिण भारत में पंचम शब्द का प्रयोग दलितों के लिए किया जाता था।[2]

महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए देश भर में यात्रा की थी। दूसरे उपवास के कारण गाँधीजी को जेल से जल्दी छोड़ा तब उन्होंने जेल की बाकी सजा का पूरा वर्ष कोई राजकीय काम न करते हुए हरिजन यात्रा में गुजारा था, अस्पृश्यता को लेकर गाँधीजी पर कई बार जानलेवा हमले भी हुए थे।

अस्पृश्यता की बुराई से खीझ कर जाति–व्यवस्था का ही नाश करना उतना ही गलत होगा, जितना कि शरीर में कोई कुरुप वृद्धि हो जाए तो शरीर का या फसल में ज्यादा घास–पात उगा हुआ दिखे तो फसल का ही नाश कर डालना है इसलिए अस्पृश्यता का नाश तो जरूर होना चाहिए। सम्पूर्ण जाति व्यवस्था को बचाना हो तो समाज में बढ़ी हुई इस हानिकारक बुराई को दूर करना होगा। अस्पृश्यता जाति व्यवस्था की उपज नहीं है, बल्कि ऊँच–नीच के भेदभाव का परिणाम है, जो हिन्दू धर्म में घुस गयी है और उसे भीतर ही

भीतर कुतर रही है। इसलिए अस्पृश्यता के खिलाफ हमारा आक्रमण इस ऊँच–नीच की भावना के खिलाफ ही है ज्यों ही अस्पृश्यता नष्ट होगी जाति–व्यवस्था स्वयं शुद्ध हो जायेगी।[3]

गाँधी जी का कहना था कि 'मैं फिर से जन्म लेना नहीं चाहता लेकिन मेरा पुनर्जन्म हो, तो मैं अछूत पैदा होना चाहूंगा, ताकि मैं उनके दुःखों, कष्टों और अपमानों का भागीदार बनकर स्वयं को और उन्हें इस दयनीय स्थिति से छुटकारा दिलाने का प्रयास कर सकूँ। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में नहीं बल्कि अतिशुद्र के रूप में हो।[4] गाँधी जी के विचारों के कारण हरिजनों को मंदिर में प्रवेश, उनके लिए विद्यालय खुलवाना आदि कार्य किये गए। इन सबका परिणाम यह हुआ कि भारत में स्वतंत्रता मिलने के साथ ही अस्पृश्यता निवारण कानून बन गया। इंग्लैंड जैसे लोकशाही राष्ट्र से महिलाओं को मताधिकार देने में वर्षो लगा दिए। अमेरिका और अफ्रीका में श्याम वर्ण लोगों को समान अधिकार मिलने पीढ़िया चली गयी यह गाँधीजी के लोक शिक्षण का ही प्रभाव था।[5]

गांधीजी भारत में सामाजिक परिवर्तन चाहते थे जिससे लोगों की व्यक्तिगत संस्कृति समृद्ध हो, व्यक्ति की सत्यनिष्ट दृष्टि का विकास हो और साथ ही व्यक्ति के हृदय एवं आचरण में अहिंसा धर्म का संचार हो क्योंकि इससे से ही पारस्परिक घृणा, विद्वेष और शोषण का अंत हो सकता है।[6]

भारत की तीन चौथाई आबादी गावों में निवास करती है। खेतों में किया जाना वाला कार्य , गलियों की साफ–सफाई, पशुओं के मरने पर उठाने का कार्य, शौचालय की साफ–सफाई का कार्य आदि कार्य दलितों के द्वारा किया जाता है लेकिन आज भी उन्हें मेहनत के अनुसार रूपये नहीं दिए जाते है। महिलाओं को लेकर जितनी भी व्यवस्थाये बनी है उनमे प्रायः दोयम दर्जे का स्थान ही दिया गया है। महिलाओं को दलित में भी दलित कहा गया गया है। महिलाओं की इस स्थिति का एक ही कारण है, हमारे समाज की पुरुष प्रधान व्यवस्था, सामाजिक असमानता, जातिप्रथा, दहेजप्रथा, लिंगभेद एवं ऊंच–नीच का भेद इन्हीं कारणों की वजह से महिलाओं की स्थिति दयनीय है। हम सब समान पैदा हुए हैं, इसलिए मनुष्यों के बीच अस्पृश्यता का कोई आधार नहीं है। इसकी समाप्ति नहीं हुई तो हिन्दुत्व भी नष्ट हो जाएगा। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि 'अस्पृश्यता का धर्म से कुछ लेना देना नहीं है और ईश्वर को हम स्वीकार नहीं कर सकते। उन्होंने अछूतों को ही 'हरिजन' कहा और स्पष्ट किया कि अछूतपन की बुराई के कायम रहते स्वराज्य अर्थहीन है। हरिजनों को बुरी आदतें त्याग करने की भी सलाह दी और उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वावलम्बन के लिए प्रेरित किया।[7]

संयुक्त राष्ट्र संघ की 'टर्निंग प्रॉम्सेज इन टू एक्शनः जेण्डर इक्वेलिटी इन 2030 एजेंडा' की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में दलित वर्ग की महिलाएं औसत उम्र ऊँची जाति की महिलाओं की तुलना में 14.6 वर्ष कम है। रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, कमजोर साफ–सफाई, पानी की अपर्याप्त आपूर्ति जैसी वजहों के कारण जाति का भेद और भी गहरा है।[8]

जब तक देश में जातिवाद का कोढ़ रहेगा तब तक देश एक स्वस्थ ,सुखी सक्षम एवं संगठित राष्ट्र नहीं बन सकता है। वर्तमान समय में दुनिया कई समस्याओं से जूझ रही है, जैसे कि कोरोना महामारी, इसके कारण बढ़ती हिंसा, महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार, दलित महिलाओं के साथ भेदभाव और असहिष्णुता। इस कठिन समय में हम अपने समृद्ध अतीत से सिख लें और विचार करें कि गांधीजी के विचारों पर अमल करके एक

नयी दुनिया का स्वरूप दिया जा सकता है। गांधीजी अपने उद्देश्यों में पूर्णरूप से सफल नहीं हो पाए, परन्तु उनके प्रयासो से दलितों के साथ सवर्ण हिन्दुओं की भी चेतना जागृत हुई।

निष्कर्ष– आज के दौर में गांधीजी के विचारों पर अमल करना आवश्यक है। गांधी जी ने समान शिक्षा पर जोर दिया। इस अस्पृश्यता की बुराई को समाप्त करने के लिए शिक्षा ही एकमात्र मुख्य हथियार है। शिक्षा के बल पर ही निम्न जातियों को ऊँचा उठाया जा सकता है। समान रूप से शिक्षा देकर ही समाज की सोच में परिवर्तन किया जा सकता है। स्वतंत्रता और समानता के मूल्यों को स्थापित करने के लिए धर्मनिरपेक्ष शिक्षा पर जोर दिया जाना आवश्यक है। गाँधी जी ने अछूतों को आत्म–सम्मान का पाठ पढाया। आत्म–सम्मान मनुष्य के लिए सबसे बड़ी ताकत है उसके बलबूते पर व्यक्ति स्वयं की सोच में परिवर्तन ला सकता है। गाँधीजी ने अपने चिन्तन में श्रेष्ठ मानवोचित मूल्यों से जुड़े आदर्श की महज बातें ही नहीं करते हैं, अपितु उसे प्रायोगिक रूप में धरातल पर साकार करके भी दिखाया है। यह सम्भव है कि आज गांधीवाद अपनी वैचारिक सम्पूर्णता के रूप में प्रासंगिक नहीं है क्योंकि समय के अनुरूप मनुष्य स्थिति बदलते रहते हैं। मनुष्य के हालात, समय की शिला से टकराकर अपने युग के अनुरूप ढालता रहता है लेकिन गांधीवाद आधारभूत जीवन मूल्य अपनी मानवोचित विशेषताओं के कारण कभी भी अप्रासांगिक नहीं हो सकते। आज भी गाँधी जी की बताई बातों का मूल्य व महत्त्व है।

28, कनिष्का रिसोर्ट, डीपीएस स्कूल के पास बायपास रोड, पॉल विलेज, जोधपुर–342001(राज.)
मोबा. +91 6350463206

संदर्भः–

1. महात्मा गांधी शांति के दूत, india-gov-in, 29 मार्च. 2014, पृष्ठ संख्या 1
2. उपाध्याय मधुकर, BBC News 17 अक्टूबर 2019
3. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, 1960, पृष्ठ संख्या 255
4. महात्मा गाँधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 114
5. महात्मा गांधी के विचार, M-K-Gandhi, Gandhi, Institutions, Bombay Savodya Gandhi Research Foundation, Vol-3, पृष्ठ संख्या 258
6. गुप्ता द्वारका प्रसाद, महात्मा गाँधी और अस्पृश्यता ज्ञान भारती, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 227
7. चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर 2002, पृष्ठ संख्या 382
8. सत्याग्रह, 26 फरवरी 2018

Contribution of Sikh Gurus towards Communal Harmony

Dr. Kavita Rani

It is very significant to note that on the eve of appearance of Guru Nanak in this world, Hinduism and Islam, the two major religions of India were actually at daggers drawn with each other. Since Muslims ruled the county, they were sovereign and they always tried to snub the non-Muslim subjects viz a viz the Hindus. The Muslim rulers were fanatic and bent upon tyrannical measures towards the Hindus. Hindu's hatred towards the Muslims had crossed all the limits. The communal harmony between the two religions had absolutely vanished.

Bhai Gurdas clearly and specifically points out deteriorated condition of the times. Bhai Gurdas holds :

Pride, hatred, jealousy, ego etc are the major

reasons of entire tension and the chaos.[1]

Bhai Gurdas holds that before the appearance of Guru Nanak there was gloom and chaos visible everywhere. The appearance of Guru Nanak made the whole world glorified. Bhai Gurdas gives a dynamic example of rising of the sun by dint of which the stress vanishes and darkness disappears.[2]

As a matter of fact, the mysticism of Guru Nanak leads humanity towards interfaith and communal harmonyThe salient features of Guru Nanak's religion lead us to respect all the religions and bring about human equality irrespective of any caste or creed.

It goes without saying that Guru Nanak's mystic career commences from his dip in Bein

rivulet. After a dip of three days, he declared that 'There is no Hindu no Musalman'.[3] This is a clear cut signal of interfaith and communal harmony which is reflected in the teachings of all the Sikh Gurus.

There is no dearth of evidence in Sikh history which proves beyond doubt the practical measures taken by Sikh Gurus towards communal harmony. The inclusion of *Bani* or compositions of *Bhagtas* in *Guru Granth Sahib* belonging to different castes and creeds, linage, dynasties, professions and provinces is a glaring instance of establishing communal harmony. To quote some of the 15 in number whose compositions find an honourable place, include Sheikh Farid of Sukarganj, a Muslim Bhagat, Bhagat Kabir, a Muslim weaver, Bhagat Ravidas who was engaged in leather work, Bhagat Namdev, a calico printer, Bhagat Pipa who had received *gur-dikhia* from Ramanand, Bhagat Jaidev whose parents were worshippers of Lord Krishna, Bhagat Trilochan of Maharashtra, Bhagat Sain of Punjab, Bhagat Sadna who belonged to a section of Islamic religion, Bhagat Dhana, a Poor peasant, Bhagat Beni, a religious preacher. The *bani*, of *Bhagatas* belonging to different walks of life has positively left a legacy of integrity and communal harmony for the coming generations.

A strong Sikh tradition holds that Guru Arjan Dev got built four doors of sacred Harmandir Sahib to assert that this sacred place of worship was open for all religions. One of the most significant and practical step taken by Sikh Gurus to bring about communal harmony was introduction of dining in the community kitchen popularly known as *langar*. The caste system approved that any food meant for public was prepared by the doubly born high caste Brahmans and no body's interference was allowed at any cost. Contrary to this in the *langar* prescribed or approved by the Gurus, meals could be cooked or served by any one and every one irrespective of the caste or creed. This led to loose the bonds of caste and class. The disciples of Sikh Gurus or anyone who took his meals in the *langar* was to sit in the

pangat or rows and took the same food. A strong Sikh tradition states that even Emperor Akbar partook food sitting with all and sundry. He paid a visit to Guru Arjan Dev on 4 November, 1598.[4]

In order to bring about communal harmony Sikh Gurus didnot find favour with the prevalent system of caste and class. They regarded caste and class system quite meaningless and futile for broader spiritual purposes. Pages of history stand witness to the fact that several people became the followers of Guru Nanak irrespective of their caste and class. They began to cherish sincere affection and regard for one another. The author of *Khalasat-ut-Twarikh* writes in 1696 A.D. to illustrate this point.[5]

Guru Nanak strongly urged the people to ignore the concept of inequality and have full faith in God, the Creator of entire universe. Infact, caste was considered of no use hereafter. Guru Nanak's injunction was:

Recognise Lord's light within all and inquire not the caste, as there is no caste in the next world.[6]

Guru Amar Das tried to make people understand that the Creator created us all and the pride of caste and class is useless because human errors are the result of his false pride. Since everyone is born from the seed of God, it is wrong to admit that there are four castes.[7] The Guru elaborates the point by stating that in the absence of God's Name everybody has low caste and one's status is like that of an insect which takes abode in dust.[8]

Condemning the caste system like Guru Nanak and his successors Guru Ram Das in *Dhanasri* Measure holds that the saintlypeople have no other caste but God, the Almighty. They feel as if they are simply puppets in God's hands.[9] People belonging to low caste or class obtain supreme status.[10] All the Sikh Gurus obviously acted upon the footsteps of Guru Nanak since one light is acknowledged and seen in them all. In the entire *bani* or compositions found in *Guru Granth Sahib*, the name of Guru Nanak is used by all the Sikh Gurus who have composed verses. Mohsin Fani who was a friend of Guru Hargobind writes that whenever the 6th Guru wrote to him, he used the word Nanak as its author or writer.[11] This depicts the element of integration in the thought and teachings of the Sikh Gurus.

Guru Tegh Bahadur who is known as an apostle of peace and integrity spread the doctrines of Guru Nanak in many regions. It was on account of his charismatic personality and the humanistic activities of harmony and interfaith that he became prominent in far off regions. It is well known in the annals of Sikh history that on account of oppression and tyrannical behaviour of Mughal Governor of Kashmir Ifthkhar Khan who was bent upon the conversion of Hindus, a group of Kashmiri *Pandits* lead by Kirpa Ram approached Guru Tegh Bahadur with a woeful tale since they regarded him as the holiest figure in Northern India. The Guru gave them solace and told them to convey to Emperor Aurangzeb that they would all be converted to Islam, in case their representative Guru Tegh Bahadur was converted. The fundamental philosophy of Guru Tegh Bahadur is that we should not

entertain anybody's fear nor should we give fear to anyone.[12]

Acting upon the above advice, Guru Tegh Bahadur sacrificed his life in order to safeguard the faith of others. We may say that this is a rare example of sacrifice for the religion of others. In fact, it was a great moral challenge to the Mughal authority in India. This extraordinary event proves beyond doubt that Guru Tegh Bahadur undertook an amazing deed of national integration, interfaith and communal harmony.

This is well known that Guru Gobind Singh fought a number of battles which were in fact, aggressive defensive battles. It is a fact that Guru Gobind Singh had to fight these battles having being compelled by the circumstances. Later however, he wrote in his *Zafarnama*, a letter of victory written to Emperor Aurangzeb about his reluctance to fight the battles. He states:

When all alternatives fail It is rightful to take to arms.[13]

Since Guru Gobind Singh loved humanity and considered his enemies in warfare his own, he advised Bhai Kanhaiya who was providing drinking water to Sikhs as well as injured soldiers of enemies in the war of Anandpur[14] to apply ointment as well without any consideration of religion.

Last but not the least by way of conclusion we may say that the concept of interfaith and communal harmony is running in the very veins of the Sikhs as their heritage. Even in the present days at the time of national and international disasters the Sikhs come in the forefront to safeguard humanity. They go to the extent of sacrificing their very lives for providing help to the helpless in despair.

Assistant Professor-History
Department of Distance Education,
Punjab University, Patiala (Punjab)

References :

1. *Varan Bhai Gurdas*, *Var* I, *pauri* 21
2. *Ibid*., *pauri* 27
3. *Puratan Janam Sakhi Sri Guru Nanak Dev Ji Ki* (ed. Shamsher Singh Ashok), Amritsar, 1969, Sakhi 14
4. Emperor Akbar's visit to Guru Arjan's *darbar* is attested by Abul Fazl in his *Akbarnama*. See, Shireen Moosvi, 'Akbar meets Guru Arjan, 1598'in *Sikh history from Persian Sources* (ed. J.S. Grewal and Irfan Habib), New Delhi, 2001, p.55
5. Sujan Rai Bhandari, 'Khulasat-ut-Twarikh' in *Makhiz-i-Twarikh-i-Sikhan* (ed. Ganda Singh), Amritsar, 1949, p.58
6. *Sri Guru Granth Sahib*, Asa Mahalla I, p. 349; Manmohan Singh (tr.), *Sri Guru Granth Sahib, Amritsar*,1996, p. 1164
7. *Ibid*., Rag Bhairo 3rd Guru, p. 1128
8. *Ibid*., Asa 3rd Guru, p. 426
9. *Ibid*., Dhanasri 4th Guru, p. 667
10. *Ibid*., Rag Suhi 4th Guru, p. 773
11. Mohsin Fani, 'Dabistan-i-Mazahib',*Makhiz-i-Tawarikh-i-Sikhan* (ed. Ganda Singh), Amritsar, 1949, p. 13
12. *Sri Guru Granth Sahib*, *Salok* 9th Guru, p. 1427
13. 'Zafarnama', *Makhiz-i-Tawarikh-i-Sikhan* (ed. Ganda Singh), *op. cit*., p. 66
14. Kahan Singh Nabha, *Gurshabad Ratnakar Mahan Kosh*, Ludhiana, 2016, p.257

* कबीरा गरब न कीजिए, कबहु न हंसिये कोय।
अबहू नाव समुद्र में, का जाने का होय॥
* गुरु लोभी सिष लालची, दोनों खेले दांव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नांव॥
* करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय॥
* जो जल बाढ़े नांव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥
* जो ताकु कांटा बुवै, ताहि बुव तू फूल।
ताहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल॥
* जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गलि अति सांकरी, या में दो न समाहि॥
* सुख कै माथे सिल परै, नाम हरि का जाय।
बलिहारी वा दुख की, पल–पल नाम रटाय॥
* साई मेरा बाणिया, सहज करै व्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़े, तौले सब संसार॥
* माया मुई न मन मुआ, मरि–मरि गये सरीर।
आसा, तिसना ना मुई, कह गये दास कबीर॥
* बूंद समाना सिंधु में, जानत है सब कोय।
सिंधु समाना बूंद में, बुझे बिरला कोय॥
* कबीरा नन्हें है रहे, जैसी नन्ही दूब।
सबी घास जल जाएगी,दूब खूब की खूब॥
* आधी और रुखी भली, सारी सो संताप।
जो चाहेगा चुपड़ी, बहुत करेगा पाप॥
* सबतै सांचा है भला, जो दिल सांचा होय।
सांच बिना ना सुख कोई, चाहे कथै जु कोय॥

छत्रपति राजश्री शाहु महाराज जयंती
26 जून

शत् शत् नमन

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

_____

_____

_____

_____

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररूचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार